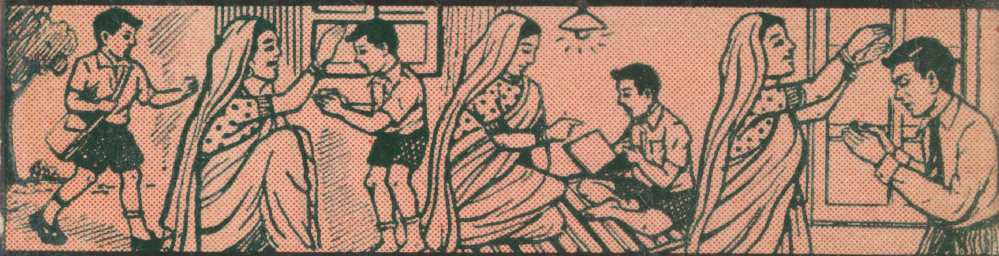




मुनि चन्द्रप्रभ सागर



# माँ

लेखक

मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागर जी

## आशीर्वाद

प. पू. गुरुदेव आचार्य श्री जिनकान्ति सागर सूरि जी म.

पुस्तक

**माँ**

लेखक

मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागरजी

संस्करण

नवम्बर, १९८२

मूल्य

निःशुल्क

प्रकाशक

महिमा ललित-  
साहित्य प्रकाशन  
बीकानेर ।

सत्प्रेरक

सुप्रसिद्ध जैन मुनि

श्री महिमाप्रभ सागर जी

परामर्शक

मुनि श्री ललितप्रभ सागर जी

आवृत्ति

५,००० (पांच हजार)

पृष्ठ

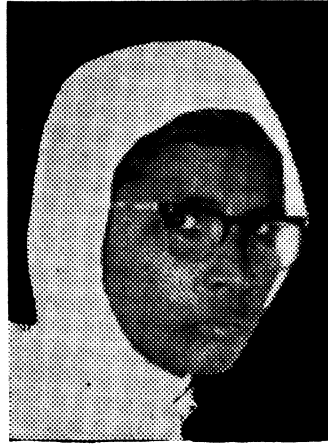
१३२

मुद्रक

अशोक प्रिंटिंग प्रैस,

नई सड़क, दिल्ली-११०००६

## ॥ समर्पणा ॥



स्व. प्रवर्तिनी आर्या रत्न श्री विचक्षण श्री जी म.  
की सुशिष्या  
साध्वी श्रेष्ठा श्री जीतयशा श्री जी महाराज

मम जन्मदात्री, जीवनांकुर-पल्लविनी, अनन्त-वात्सल्यपूर्ण-वरदान-  
दायिनी, सत्पथ-प्रदर्शिनी, जिन धर्माचरणानुकूल-मुनिजीवन-मार्ग-  
संदर्शिनी, तितिक्षामूर्ति, साक्षात्-पावनाकृतिधारिणी साध्वी मातृश्री  
के पुनीत करकमलों में सभक्ति सश्रद्धया यह “माँ” कृति समर्पित.

मुनि चन्द्रप्रभ सागर





## अभिनन्दन

‘माँ’ पुस्तक को मैंने आद्यापान्त पढ़ा है। यदि ऐसे कहूँ कि अक्षरशः पढ़ा और समझा है तो यह यथार्थ है। जब मैंने इसको पढ़ना आरम्भ किया तो विचार उभरने लगा कि यह कैसा विषय है। जिस पर साहित्य विशारद युवा मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागर जी को अपनी लेखनी चलाने पर विवश होना पड़ा, परन्तु प्रारम्भ कर देने के पश्चात् पूरी पुस्तक पढ़ना एक अनिवार्य हार्दिकता हो गई। ‘माँ’ पर पुस्तक लिखी देखकर लगा कि सम्भवतः रूसी लेखक गोर्की के ‘माँ’ उपन्यास-सा कोई उपन्यास लिखा गया है! परन्तु एक जैन मुनि का उपन्यास-साहित्य से क्या सम्बन्ध हो सकता है? इसलिए “आश्चर्यवत् पश्यति कश्चदेनम्” की उक्ति के अनुसार इसे पढ़ने लगा।

इस रचना का क्या नाम साहित्यिक परिवेश में हो सकता है यह निश्चित करना सरल नहीं है। न तो उपदेशात्मक व्याख्यानों का ही अविकल संग्रह है। न ही इसे लम्बी कथा का नाम दिया जा सकता है। न ही यह लघु उपन्यास की परिधि में आ सकता है। तब इसे मैं एक युवा विचारक का उल्लास कथाकाव्य कहना उचित समझता हूँ। भारतीय साहित्य शास्त्र में ऐसी रचनायें उपलब्ध हैं जो विविध परिवेशों में भ्रमण करके भी एक केन्द्र बिन्दु पर आकर स्थिर हो जाती हैं। ‘माँ’ कृति की भी यही स्थिति है। छोटे-छोटे दृष्टान्तों, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध कथा-खण्डों, देश-विदेश के अनेकशः महाकवियों के काव्यांशों से समन्वित यह रचना माँ को केन्द्र में रखे हुए है।

नारी की दार्शनिकों ने माया, प्रकृति और जननी के रूप में व्याख्या की है। उसके जननी के अतिरिक्त बहन, पुत्री, भार्या और वार-विलासिनी आदि रूप

भी लोक-ज्ञात हैं। परन्तु इस कथन के सामने सबकी द्युति मन्द रही है कि “जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि” जन्मभूमि से भी पूर्व जननी नाम दिया गया है। क्योंकि जन्मभूमि के दर्शन का माध्यम भी तो वही है। नारी की भूमिका कितनी विचित्र है कि वह माँ, पुत्री और बहन के रूपों के अतिरिक्त अन्य सभी रूपों में नर को नचा देती है। और बहन के रूप से भी बढ़कर माँ के रूप में वह सब को दूरियों से बचा देती है।

मातृ शक्ति के सम्बन्ध में भारतीय साहित्य में “माता पृथ्वीः पुत्रोऽहं पृथिव्याः” की चर्चा सर्वविश्रुत है। वस्तुतः माँ और धरती का आकार एक ही है। भारत में मातृ सत्ता की प्रधानता युगों तक प्रचलित रही। क्या विचित्र गति-मति है कि विश्व के महान् से महियान् और अणोरअणीयान् पदार्थों का जन्म मातृ शक्ति के आधार से ही होता है।

मैं अपनी बात कहने के लिए पुनः इस पुस्तक की ओर लौट रहा हूँ, ऐसा इसलिए कि भारत की धरती में इस गये-बीते युग में भी ऐसे विचारक उभर रहे हैं, जिन्हें मातृत्व की अदम्य-अगाध शक्ति के प्रति आस्था है। यह भौतिकवादी वैज्ञानिक, वैलासिक-राजनीतिक पद-लोभ के आकर्षणों से समाक्रांत वातावरण और एक युवा विचारक की दृष्टि “मातृ सेवी भव” की ओर आकृष्ट हो गई है—यह भारतीय जीवन की श्रद्धा और निष्ठा का सूर्योदय है। एक आलोचक के नाते भी कहूँ तो दिन-रात कूड़ा-ककट लिखने वालों से यह ‘माँ’ रचना कहीं अधिक कल्याणी स्थायी निधि है। इसे पढ़कर कतिपय व्यक्तियों का भी जीवन परिवर्तन हो गया तो रचना की सफलता का प्रमाण असंदिग्ध हो ही जायेगा।

सहज-भाव से शब्दबद्ध यह रचना पाठकों को पढ़ने के लिए आकृष्ट करेगी और यदि इसका अनुवाद अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी आदि भाषाओं में हो गया तो इसकी लोकप्रियता की सीमाएँ विस्तृत हो जायेंगी। मैंने “भूमिका” न लिखकर “अभिनंदन” शब्द इसीलिए लिखा है कि युवा मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागर जी से मेरा सम्बन्ध आध्यापक और अध्ययनशील विचारों के स्तर पर स्थापित हो

( ग )

गया है और इस उत्तम रचना के रचयिता के रूप में अभिनंदन करना ही उचित समझता हूँ। मेरा विश्वास है कि भविष्यत् उनकी हाथ में धरी कलम से कई ऐसे ग्रन्थ-रत्न देश को दिलाकर रहेगा जिनसे एक विचारक की प्रखर मेधा का आलोक युगों तक देश के जन-मन में पुनः पुनः उभर आने वाले अज्ञान-अन्धकार का अप्सारण करता रहेगा।

पुनः पुनः अभिनंदन !

२-११-८२

१२, अशोक पार्क एक्सटेंशन,  
रोहतक रोड़, नई दिल्ली-२६

**डा. ओमप्रकाश शास्त्री**

एम. ए., पी. एच. डी., डी. लिट्  
वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,  
दयारामसिंह कालेज, नई दिल्ली-३  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

## पुरोवाक

“माँ” पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे इस पुस्तक के लिखने की अनुभूति से अनुस्यूत प्रेरणा कहां से मिली ! ये चिन्तन के धागे जब मैंने



एक सूत्र रूप में संगृहीत करने आरम्भ किये तो मेरे मानस-पटल पर एक मूर्ति पुनः पुनः उभर कर मुझे संकेत देने लगी कि जननी ही जगत् का आधार है । इसलिए मेरे अन्तर्जगत् में लगा कि स्व जननी की दया, ममता, वात्सल्यमयी मूर्ति मुझे बार-बार इस कृति को लिखने के लिए सम्प्रेरित करती रही है ।

जननीमात्र विश्व की महत् शक्ति है । प्रकृति का स्वरूप इसी का अपर नाम है । धरित्री इसी का सारगर्भित पर्याय है, इसलिए इस पुस्तक की प्रेरणा स्व जननी और जगत् जननी के एकाकार से सम्प्राप्त हुई, जो शब्दों के कण-कण में बश्चिरीहि के समान इस शब्दाकार में साकार हो गई है ।

यह साकारता अन्तःकरण के भावों की अपनी रूपमयता है । जिसमें मानवीय हृदय के अमृत-कण युग-धर्म के अनुकूल संचित हैं ।

अनेक प्रवचनों में वर्तमान जीवन के शोषित और दमन-चक्र से प्रताड़ित तथा प्रतारित मातृ जीवन के प्रति समाज की सुषुप्त चेतना को जागृत करने का सुसम्बद्ध उपक्रम इस रचना में भी सहज-भाव से मूर्तिमान हो गया है । कहा गया है कि विश्व का सौन्दर्य यदि कहीं देखने को मिलता है और वात्सल्य का अपार सागर यदि लहराता हुआ देखना हो तो उसे माँ की ममतामयी आकृति में देखा जा सकता है । आधुनिक विज्ञान-यंत्रों से संकुलित समाज और विच्छिन्न परिवार में प्रेम-पावन धरातल को सुदृढ़ करने के लिए

माँ ही एक मात्र अमोघ शक्ति है। उसी शक्ति का अमोघ दर्शन इस कृति में किया जाता है।

भारतीय चिन्तन-धारा के महापुरुषों, योगियों एवं सन्तों ने विश्व के प्रसंग में नारी के अन्य रूपों की आलोचना तो अपनी-अपनी पक्षधरता से की है परन्तु जन्मदात्री माँ के प्रति इन सभी विचारकों ने शब्दों की भिन्नता होते हुए भी स्वर की एकात्मकता से माँ की वन्दना की है। इसलिए यहाँ भारतीय विचारकों चिन्तकों, धार्मिक आचार्यों, राजनीतिक विशारदों, समाज उन्नायकों और विश्रुत साहित्यकारों के कथन यत्र-तत्र समन्वित किये गये हैं। एक सहज मानवीय स्थिति यह है कि माँ के प्रति जैसी आस्था भारतीय चिन्तन-धारा में है वैसी ही धारणा पाश्चात्य दार्शनिकों, साहित्यिकों और जीवन के अन्य विविध क्षेत्रों के तत्व-चिन्तकों ने भी अपने शब्दों में कही हुई है। इसलिए इस पुस्तक में पाश्चात्य साहित्य के अनेक उद्धरण ससंदर्भ प्रस्तुत किए गए हैं ताकि यह दृष्टि निष्कलुष रूप से मानव-मात्र के सम्मुख आ जाए कि माँ का स्वरूप, उसकी ममता का विस्तार, दया का प्रस्तार और हृदय की करुणा का आकार इतना हृदयहारी है कि युगों के अन्तराल के पश्चात् भी उसमें विकृति का कोई चिह्न कभी नहीं उभरा है।

माँ के प्रति कर्तव्य-भावना चिरयुगीन और चिर नवीन साधना का प्रतीक है। उसके संकेत-बिन्दु पुस्तक के आद्यान्त में बिखरे पड़े हैं। पाठक अपनी रुचि और मनोकामना के अनुकूल देख-पढ़ और स्पर्श करके हृदयंगम कर सकते हैं।

परमश्रद्धेय गुरुवर्य आचार्य श्री कान्ति सागर सूरि जी के चरणारविंद के रजकणों का ही प्रताप है कि यह अकिंचन शिष्य इस पुस्तक को शब्दरूप दे पाने में समर्थ हो सका है। इस विशाल दृश्यमान जगत् में गुरु-अनुकम्पा शिष्य के लिए सत्प्रेरणा की अग्नि-शिखा का कार्य करती है। अतः गुरुचरणों में प्रणामांजलि सहित अचल भक्तिभावना की स्थिरता का आकांक्षी बने रहने में ही लेखक का चिरकल्याण समाहित है।

पुस्तक के प्रकाशनार्थ आर्थिक आयोजन पूज्य जैन मुनि श्री महिमाप्रभ



( च )

सागर जी की असीम कृपा से ही सम्भव हो सका है। दानी-सज्जनों ने उनके संकेत मात्र से वित्त व्यवस्था सुलभ कर दी जिससे पुस्तक-प्रकाशन सुचारू रूप से हो गया है। महाराज साहब का आशीवादात्मक मंगलमय वरद हस्त अपनी अमूल्य थाती है। उनके प्रति विनीत भावभीनी कृतज्ञताबोधनी हृदयभावना एवं समर्चना प्रस्तुत करने में लेखक के श्रम की सार्थकता निहीत है।

युवा मुनि श्री ललितप्रभ सागर जी ने इस पुस्तक के लेखन-काल में ही प्रतिदिन इसे सुनते हुए अनेक मातृ-पक्षों की ओर लेखक का ध्यान आकृष्ट किया है। वे प्रसंग इस पुस्तक में अनुभव की सार्थकता के साक्षी हैं। परन्तु उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन की अपेक्षा एक पथ-सहचर की अनन्य भावना का गौरव बनाए रखना लेखक का अप्रतिम संबल है।

इस पुस्तक के लिए 'अभिनंदन' के शब्द लब्ध प्रतिष्ठित समालोचक डा० ओमप्रकाश जी शास्त्री, डी० लिट० ने लिखकर सहृदयता प्रकट की है। उनके हृदयोद्गार प्रकट करने के लिए उनके प्रति आभार प्रकट करना लेखक का कर्तव्य है।

अन्त में मुझे केवल इतना ही कहना है कि नैतिकता का जीवन में अकाट्य मूल्य है। नैतिकता जीवन की अलौकिक स्निग्ध शिखा है और माँ उस शिखा की दीप्ति है। यह पुस्तक इसी दृष्टि से आज के युग के मानव के लिए प्रस्तुत की गई है कि वह उसे जीवन में अर्चित और समन्वित कर सकें ताकि भारतीय जीवन की दिव्य आधार-शिला "माँ" की ममता के रूप में सदा-सदा के लिए सुदृढ़ बनी रहे और उसका स्नेहमय प्रदीप मानव-जीवन में अमर स्निग्ध आलोक विकीर्ण करता रहे।

सधन्यवाद !

लेखक :

चन्द्रप्रभ सागर

नवम्बर, 1982

# माँ

“और मोहि को हैं, काहि कहिहौं ।

रंक राज ज्यों मन को मनोरथ, केहि सुनाहि सब लहिहौ ।”

माँ ! तेरे को छोड़कर अन्य मेरा कोई भी नहीं है, चाहे वह फिर बालिका हो, युवती हो अथवा प्रौढ़ा, प्रौढ़ हो, युवक हो या बालक, जिसके समक्ष रंक से राजा बनने का मनोरथ कह कर पूर्ण करूँ तू ही एक ऐसी महान मूर्ति है जो मेरी बात को सुन सकती है। यहीं तक नहीं अपितु सुनकर चिन्तन, मननादि भी करने वाली तू ही है, मात्र एक तू ही। सच कहता हूँ एक तू ही....।

उपर्युक्त दृश्य मेरे मानस-पटल पर अमिट रूप से अंकित है— मास त्रय पूर्व वर्षायोग का पुनीत प्रभात। अनायास एक मानव के मानस में प्रस्फुटित और मुखारविन्द से निकले माँ के प्रति गतिमान श्रद्धान्वित शब्द, कृतकृत्य भाव से, कृतज्ञता भाव पूर्ण—जो अपने आप में अमोल माधुर्य भावों के स्तवक की भांति चुना हुआ गुलदस्ता था। जिसमें ही तो देव विद्यमान है। आप श्री जैसे पुरुषोत्तम पुरुष के घर में नहीं ! कदाचित्.....नहीं.....नहीं.....! “न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृन्मये।” यह माँ के अपरिमित प्रेम का परोक्ष नहीं पर प्रत्यक्ष प्रभाव है। मां-प्रेम.....। माँ-प्रेम.....।



मानव-मन विभिन्न भावों का अक्षयकोष है और प्रेम उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाव है। मानव-प्राण में प्रेम की भावना अनादि-काल से ही उसके हृदय की धड़कन और रक्त की लालिमा बनकर

जीवित है। माँ की मानसिक क्रिया में प्रेम एक उत्तमोत्तम तत्व है। सातत्य और समता में कैसा अजोड़ है—माँ का प्रेम ! उसके प्रेम की विपुलता, विरलता और विशालता की तुलना में व्यक्ति का नहीं, समाज का नहीं, प्रान्त का नहीं, राष्ट्र का भी नहीं, सम्पूर्ण विश्व का अन्य कोई भी प्रेम नहीं आ सकता।

आ सकता है ? क्या आ सकता है—मेरा और आप का सिर ? वह भी नहीं आ सकता, कदापि नहीं।

प्रेम सकल श्रुति सार हैं, प्रेम मृि सकल स्त मूल।

प्रेम पुराण प्रमाण हैं, कोउ न प्रेम के तूल ॥

हिन्दी गद्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह कथन असत्य नहीं है, क्योंकि उसकी प्रेमानुभूति में जहाँ एक ओर गौरव-गरिमा व उदात्तता है तो दूसरी ओर सहजता, स्वच्छता और मर्मस्पर्शिता भी। जो अनुकूल और उपयुक्त वातावरण पाकर मानव हृदय के सुषुप्त स्थायी भावों को उदीप्त और उद्बुद्ध कर देती है। प्राचीन-अर्वाचीन प्राज्ञ-पुरुषों और आधुनिक कवियों ने भी इसी कारण माँ के प्रेम की महिमा की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है तथा इसके गुणगान गाये हैं। कारण ? कारण उसका हृदय है। जो विशाल, परम विशाल है। उसके समक्ष शायद अम्बर भी छोटा होगा। हृदय मन्दिर में जो प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ है। उसके बारे में बंगला उपन्यासकार विभूति भूषण बंधोपाध्याय ने डंके की चोट से 'पथेर पांचाली' में लिखा है कि "माँ बच्चे को स्नेह देती है और उसे आदमी बना देती है, इसलिए उसके अन्तर में युग-युगान्तर से सर्वत्र माँ की गौरव गाथा प्रतिध्वनित होती रहती है।" स्व शिशु ही नहीं मानव जाति के प्रति उसके हृदय में असीम प्रेम एवं सद्भाव है। वह यह भी जानती है कि प्रेम चन्द्रमा के समान है। अगर वह बढ़ेगा नहीं तो वटना शुरू हो जायेगा। अतः माँ पुत्र से अत्यधिक प्रेम करती है। इसीलिए सीगर

ने भी कहा—Love is like the moon, when it does not increase it decreases.

माँ के निश्चल प्रेम में पवित्रता होती है, पवित्रता भारत की वस्तु है, भारत का गौरव है, भारत की संस्कृति है। उसका मन-मन्दिर पवित्र है भले वह पूरा स्वच्छ न हो। उससे प्रवाहमान प्रेम की सौरभ निर्मल है भले वह उत्तम सुगन्ध वाला न हो।

ओह ! अभी तक तो मैंने हस्त-कलम से कुछ लिखा ही नहीं, उससे पूर्व ही प्रत्युत्तर मांगने के लिए प्रश्न उपस्थित कर दिया। “माँ का प्रेम” किस चिड़िया का शुभ नाम है” ?

‘माँ का प्रेम’, जो आस्वाद्य-आस्वादक है वही तो माँ का प्रेम है। जो चित्त को स्पर्श करने वाला विशुद्ध मिष्ठान्न, किन्तु पुरुषार्थमयी सुकोमलता का समादरणीय सुनाम है। उसका प्रेम “तलवार नी धार पे धावनों छै”—असि-धारा व्रत के समान हैं। उसका आनन्द छन्द-बे-छन्द अथवा शब्दों के बन्धन में नहीं बंध सकता, शब्दातीत-उपमा जो संप्राप्त हुई है। उसके मानस में से प्रेम की गगरी प्रतिपल प्रतिक्षण नित्य ही छलकती रहती है। समस्त जगजीवन का सारांश प्रेम नहीं तो क्या आप हैं या बाप ! वाक्य विषैला लग गया, भयभीत मत होओ, विष को अमृत के रूप में परिवर्तित करना तो अपने बाएँ हाथ का खेल है। माँ के प्रेम-रंग से रंगा हृदय जीवन भर ! पूरे जीवन में प्रेम के व्रत का पालन करने को उत्सुक होता है। “प्रेम बिना तलवार के शासन करता है” यह भारतीय कहावत प्रसिद्ध है। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक स्वेटमोर्डन का कहना यथार्थ है कि “प्रेम ही शान्ति है, प्रेम ही सुख और आनन्द है।”

हाँ ! एक बात और, मान लूँ कि विज्ञान हर तारे को बदल सकता है पर सच कहता हूँ दिल तो हमारा आपका चाहे किसी का केवल प्रेम के द्वारा ही बदल सकता है। और यह कार्य माँ ही करने में सक्षम है, पत्नी नहीं। महान भारतीय संत स्वामी विवेकानन्द ने कहा

है कि “ईश्वरीय प्रेम को छोड़कर दूसरा कोई प्रेम मातृप्रेम से श्रेष्ठ नहीं है।” कारण यह कि उसमें जीवन का सारल्य और वाणी के ओज के साथ हृदय का माधुर्य समाहित है। वह प्रेममयी वाणी वीणा की मृदु भंकार के सदृश है। जिस प्रकार वीणा की भंकार मधुर और कोमल होती है, उसी प्रकार इसकी वाणी भी सरस और कोमल होती है।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि माँ के प्रेम के आस्वादन की प्रक्रिया किस प्रकार सम्पन्न होती है? उत्तर है—जिस प्रकार से विविध प्रकार के व्यंजनों के मेल से निर्मित भोजन को खाते समय सुमनस पुरुष—परिष्कृत मन वाला व्यक्ति हर्षादि को प्राप्त करता है, उसी प्रकार से वाणी, अंगादि से स्वाभाविक रूपेण सूचितव्य क्रियाएँ स्फुरित नाना प्रकार के भावों से व्यंजित होते ही स्थायी भावों वाला सहृदय पुत्र उसके प्रेम वात्सल्य का आस्वादन करता है और प्रसन्नता प्रफुल्लता भी संप्राप्त करता है। उसका समागम मन के सन्ताप को दूर करता है और आनन्द की वृद्धि भी साथ ही साथ चित्तवृत्ति को संतोष भी देता है।

भारतीय ऋषि नारद जी ने भक्तिसूत्र में प्रेम की व्याख्या करते हुए लिखा है—“अनिवर्चनीयं प्रेम स्वरूपम् मूकास्वादनवत्”। अर्थात् प्रेम का स्वरूप अवर्णनीय है तथा इसका आस्वाद गूँगे के गुड़ के समान है। स्पष्ट है कि प्रेम एक गहन, गम्भीर, पवित्र, सात्त्विक अनुभूतिजन्य आकर्षण है, जिसके उदय होने से माँ, पुत्र, पुत्री, रूप त्रिवेणी को आनन्द की प्राप्ति होती है।

पुष्प में सुगन्ध, तिलों में तेल, अरणि काष्ठ में अग्नि, दूध में घी, ईख में गुड़ और सूर्योदय वेला में गगन में तारे दिखाई नहीं देते किन्तु उनका अस्तित्व उसमें छिपा रहता है। तथैव माँ के हृदय का



प्रेम द्रष्टव्य नहीं होता, परन्तु वह उसके हृदय में समाहित होता है, क्योंकि वह अपने आप में अमूर्त और निराकार होता है।

माँ प्रेम रूपी अपरिमित एवं अथाह उमड़े हुए सागर के समान विशाल है, जिसमें हिन्द महासागर को छिपा लेने की अगम्य शक्ति निहित हैं। वह प्रेम अविभाज्य होता है। जैसे आम, दूध, इलायची, चीनी व गुलाब जल से तैयार शर्बत पीने वाला यह कदापि अनुभव नहीं कर सकता कि अब मैं आम खा रहा हूँ, चीनी फाँक रहा हूँ, दूध पी रहा हूँ, इलायची मुखवास से मुँह साफ कर रहा हूँ अथवा गुलाब जल पीकर पेट को महक दे रहा हूँ। वैसे ही प्रेम है।

टप.....टप.....टप ! यह क्या ? मुँह में से पानी आ गया और नीचे गिर-गिरकर भूमि में आकर वही पानी की बूँदें उसी में ही खो गयीं। पीने की इच्छा इतनी तीव्र ! पर शर्बत का स्वाद अविभाज्य है। जब इसका स्वाद ऐसा है तो माँ के प्रेम का तो क्या कहना...

माँ का प्रेम अखण्ड है ! केवल अखण्ड नहीं, अद्वितीय, आनन्दमय एवं चिन्मय भी। उसके सरस सुन्दर हृदय से जो वाणी निःसृत होती है वह सरल होती है, उसमें कहीं भी छलकपट की दुर्गन्ध तक नहीं आती और भाषाशैली में होती है कोमलता, सरलता एवं अनन्यता। इसके अतिरिक्त उसका प्रेम शुद्ध, अनादि, अनन्त, अगाध गंभीर है तथा उदात्त भी। प्रत्येक जीवन में प्रेम की अनन्यता और ऋजुता अनिवार्य है। भूदान यज्ञ के जन्मदाता आचार्य विनोवा भावे का यह कथन आज भी साहित्य में गूँज रहा है कि “भाई बहनों को एक करने वाली कोई शक्ति है तो मातृप्रेम है।” कोमलता में जिसका हृदय गुलाब की कलियों से भी कोमल, दयामय है। पवित्रता में जो यज्ञ के धूम के समान है, कर्त्तव्य में जो वज्र की भाँति कठोर है, वही विश्व जननी है। यह माँ मात्र जननी न होकर विश्व की विराट् शक्ति हैं। मेरे मस्तिष्क में इ० लेगोव का वाक्य भ्रमण कर रहा है कि ‘माता ही पृथ्वी पर ऐसी भगवती हैं जिसके यहाँ कोई



नास्तिक नहीं ।’

माँ के द्वारा विश्व में सौहार्द, सत्य, त्याग, प्रेमादि और परस्पररोपग्राही जीवानाम् जैसी उदार वृत्तियों की शुभ स्थापना होती है। सृष्टि में जन्म लेकर जो मनुष्य माँ के प्रेम की रसधारा में अल्प समय के लिए भी निमग्न नहीं हुआ तो उसके जीवन को मरुस्थलीय यात्रा ही समझना चाहिए। क्योंकि :

क्रम अवगतव्य अपरिहार्य,  
जीव का ह्रास विकास ।  
कथन मनीषी धर्माचार्य,  
संसार समुद्र में निवास ॥  
जहाँ जीव अनादि काल,  
अव्यवहार राशि में वास ।  
वहाँ नहीं करता पुरुषार्थ,  
पश्चात् विपरीत विन्यास ।  
यथा सरिता में अव्याहत,  
गति अनवरत जल-बहाव ।  
प्रकृति का सुरम्य प्रवाह,  
पत्थर गोल काल-प्रभाव ।  
तथा व्यवहार राशि में आन,  
काललब्धि कर प्राप्त ।  
चरम शिखर तक विकास,  
मानव जीवन संप्राप्त ॥

(मेरी कविता, मानव जीवन कैसे प्राप्त ?)

अर्थात्—जीव के ह्रास-विकास का क्रम क्या है? अनादि काल से यह जीव संसार-सागर में बस रहा है। सर्वप्रथम यह अव्यवहार राशि में होता है, वहाँ कोई पुरुषार्थ नहीं करता। नदी के नीर के प्रवाह में जिस प्रकार कुछ पत्थर कालप्रवाह से गोल हो जाते हैं,

उसी प्रकार से काललब्धि प्राप्त कर यह जीव व्यवहार राशि में आता है और विकास करते-करते मानव जीवन प्राप्त करता है। दुर्लभ मानवजीवन अनंत बार मिला। आज भी हम उसी जीवन में हैं।

मानव जीवन होते हुए भी जिसकी कुक्षी (कोख) से जन्म लिया, उसके प्रति अभी तक आपके हृदय में श्रद्धा जागृत नहीं हुई है। मन में श्रद्धा-दीपक प्रज्वलित करो और फिर उसी प्रकाशांश से देखो क्योंकि जिस प्रकार मानो तो गंगा माँ है, न मानो तो बहता पानी। प्रतिमा में प्रभु प्रतिष्ठापित है, न मानो तो पत्थर का टुकड़ा और माँ, प्रेम की अमर दूतिका है, न मानो तो हाड़-मांस का पुतला।

माँ का पावन जीवनदर्शन समता, शुचिता, सत्य, स्नेह से लहराता हुआ सागर है। उसका जीवन और प्रेम, गंगा की निर्मल धारा सम पवित्र है। और इस प्रेम गंगा के अन्दर जो कोई स्नान करेगा, कर्म-मैल से मुक्त होकर, एक दिन वह विश्वनाथ बन जायेगा। जीवन को शुद्ध पावन करने हेतु माँ गंगा समान है, जिसमें स्नान करने से मानव मानवता की पूर्णता को प्राप्त करता है।

“माता का हृदय दया का आगार है। उसे जलाओ तो उसमें दया की ही सुगन्ध निकलती है। पीसो तो दया का रस निकलता है। वह देवी है। विपत्ति की क्रूर लीलाएँ भी उस निर्मल स्वच्छ स्रोत को मलिन नहीं कर सकती”—प्रेमचन्द, जो हिन्दी उपन्यास सम्राट् व कहानीकार हैं, उनके यह शब्द आज भी मुझे याद हैं। वैसे भी अच्छा हृदय सोने के मूल्य का होता है। सर्वश्रेष्ठ अंग्रेज व नाटककार विलियम शेक्सपियर का कथन A good heart is worth gold सुप्रसिद्ध है।

माँ के हृदय में क्षमा तिजोरी में धन की तरह भरा हुआ है और क्षमा शान्ति का मूल है। किसी ने उसे कष्ट दिया, हानि की, अपमान किया, कटु वचन कहे पर इस परम नारी माँ ने तो सबको क्षमा-दान दिया। माँ को क्षमा का एक उत्कृष्ट उदाहरण है:—

“खट् खट् खट् खट् खट्” की आवाज के साथ पांच मस्तक शरीर से पृथक् करके पाण्डवों से बदला लेकर द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा पाण्डवों के तम्बू से यह सोचता हुआ कि आज मैंने पाँचों पाण्डवों को मार डाला है—बाहर चला आया और अपने तम्बू में चला गया।

प्रातःकाल होते ही बिजली की भाँति यह खबर सारे नगर में फैल गई। द्रौपदी ने जब देखा कि मेरे पाँचों पुत्रों को गुप्त रूप से आकर कोई मार गया है तो उसके हृदय में गहरी वेदना हुई, वह क्रोध से तमतमा उठी।

युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव जैसे शक्तिशाली पतिदेवों के संरक्षण में रहते हुए भी मेरे एक दो नहीं पूरे पाँचों पुत्रों की कोई व्यक्ति हत्या कर जाए, यह मेरे लिए बड़ी शर्म की बात है। यदि उस हत्यारे को किसी भी तरह आज ही पकड़ कर मेरे सम्मुख न लाया गया तो मैं भी अपने प्राण त्याग दूँगी। इसप्रकार पतियों को सम्बोधित करते हुए बोली।

यह सुनते ही तथा युधिष्ठिर का इशारा पाते ही अर्जुन और भीम दोनों जाकर अश्वत्थामा को पकड़ लाये। बोले—यही है, अपने पुत्रों का हत्यारा। कहो, इसे क्या दण्ड दें।

अश्वत्थामा को जंजीरों के बन्धन से जकड़े हुए द्रौपदी ने ज्यों ही देखा कि उसका क्रोध नौ दो ग्यारह हो गया, शान्ति की धारा-सी बहती हुई उसके अन्तःकरण से निस्सृत हुई, प्रेम भरे दिल में क्षमा-भाव जागृत हो गया। उसकी वाणी में—‘यह हत्यारा जरूर है, किन्तु मैं एक माँ हूँ। पुत्रहीनता का दुःख कैसा होता है इसे एक माँ ही अच्छी तरह से समझ सकती है, मैं पुत्र-वियोग के सन्ताप को जंसा अनुभव कर रही हूँ वैसे इसकी माँ को क्यों होने दूँ? मेरे पुत्रों के स्थान पर इस हत्यारे की हत्या करवा देने से मेरे पुत्र तो जीवित नहीं होने वाले हैं तब क्यों मैं अपने समान पुत्र विरह के शोक में इसकी माँ को डुबाऊँ।’

“मेरी यही इच्छा है कि इसे बन्धन मुक्त कर दिया जाए। मैं इसे क्षमा करती हूँ।”

यह ऐसी माँ का दृष्टान्त है, जिसके दिल में दुश्मनों के प्रति भी उदारता व प्रेम है और इसी कारण ये माताएँ इतिहास की अमिट रेखाएँ बन गईं।

माँ ही प्रेम एवं प्रेम ही माँ है।

अरे……! माँ के प्रेम-वात्सल्य को पाने के लिए उसकी गोद में क्रीड़ा करने का परम सौभाग्य तो सुर-सुरेन्द्र को भी दुर्लभ है। भव्य एवं अभव्य का निर्णय करने में भी उसका प्रेम सहायक होता है। जो अभव्य होता है वह उसके मन-वचन से वात्सल्य नहीं पा सकता। यह मान्यता देव देवेन्द्रों की मान्यता है। अरे! माँ और मातृभूमि तो स्वर्ग-जन्नत से भी विशद श्रेष्ठ है। वर्तमान छायावादी कवि ने योग्य ही कहा है—“जननी जन्मभूमिश्च स्वर्ग से महान है।”

और प्राचीन युग में महर्षि बाल्मीकि ने भी तो कहा था—

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि।

अथर्ववेद में लिखा है कि भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ—“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ॥”



माँ-प्रेम! यह तो “सत्यं शिवं सुन्दरं”, सार्वजनीनता, चिरन्तनता अनुभूति और आदर्श की समष्टि है।

सुन्दरियों का लावण्य जिस तरह हमें मुग्ध कर लेता है उसी तरह माँ के वचनामृत में निहित व्यंग्य भी हमें मुग्ध कर लेता है। फिर चाहे वह तिक्त हो या कटु, कषायला हो अथवा अम्ल, मधुर हो या लवण। मुझे एक बार किसी ने कहा कि ईरान के सर्वश्रेष्ठ विचारक, नीतिज्ञ व कवि शेख-सादी ने कहा है “माँ की ताड़ना, पिता के प्यार से अच्छी होती है।” उसके प्रेम में यही तो मजा है! आनन्द है!

लम्बे जीवन के लिए आनन्द तो एक रसायन है। वास्तव में माँ

तथा उसका वात्सल्य जगत का अमूल्य और अद्वितीय ऐसा विशाल परम सुखानन्द है। उसके वात्सल्य का स्वाद, पान के रस के सदृश स्पष्ट भलकता, चित्त में प्रविष्टि करता, सर्वांग को सुधारस से सिंचित करता, परमानन्द के समान अनुभूत होता और अलौकिक चमत्कृति से युक्त रहता है। सन्तान अथवा सन्तान तुल्य व्यक्तियों के प्रति उसका प्रेम-वात्सल्य गजब का ही होता है, साथ ही साथ उसमें अनोखापन तथा गजब का अद्भुत जादू भी होता है। तभी तो.....।

चिराग से जलते माँ के जीवन पर,  
दुनियाँ दीवानी बने।

हिमगिरि सा प्रोन्नत यह मन,  
सदियों की कहानी बने।

इस प्रकार से कहते हैं।

मनुष्य के समीप में समीप, सम्पूर्ण समीपवर्ती यदि कोई है तो केवल माँ ही है। They are my nearest and dearest माँ ही अत्यन्त निकटवर्ती व अति प्रिय है। जिस प्रकार उद्यान में खिले हुए पुष्पों की सुगन्ध छिपाए नहीं छिपती उसी प्रकार पृथ्वी पर माँ का प्रेम छिपाए नहीं छिप सकता। आचार्य रजनीश की पुस्तक अमृतकण में मैंने पढ़ा कि 'प्रेम आत्मा की सुवास है।'

माँ का प्रेम ! मेरी आन्तरिक माँ एक है पर बाह्य अनेक भिन्न-भिन्न भाँति की हैं। दृष्टि डालिए। मूल्य भी है उनका, प्रदर्शित करूँगा ! क्यों.....? क्यों क्या ? भला फालतू नहीं है कार्य भी दिखा दूँगा। मेरी माँ..... अरे भाई ! मेरी माया निराली है। आपकी माँ केवल आपकी ही नहीं मेरी भी है। उसकी माँ भी मेरी माँ है। यह भी मेरी वह भी मेरी; इधर वाली भी और उधर वाली भी। यत्र तत्र सर्वत्र..... नारी मात्र मेरी माँ है लेकिन निर्लिप्त भाव से। यह माँ मेरे पिया के सच्चिदानन्द स्वरूप के पास मुझे ले जाती है। वह सिर

दर्द को विस्मृत कराती है। इधर वाली सूने में मिली थी और उधर वाली पूने में मिली थी।

यद्यपि आपने तो माँ के उपकार का ईमान विक्रय कर दिया है पर पढ़कर हैरान मत होइये मेरे पास अन्य माँ भी है, पल दो पल रुकिये द्रष्टव्य कराता हूँ, आप पढ़ने के इच्छुक हो तो कलम चलाता हूँ, डिजाइनें अनेक हैं। अरर.....आप तो बुरा मान गये।

“नहीं।”

बुरा नहीं माने तो दिल्लगी समझ गये...तभी तो...खैर ! लेकिन मेरे विभिन्न रिश्ते नाते हैं जो आपको उत्तमोत्तम लगें स्वीकार कर लीजिए। क्योंकि मेरे जीवन को सुवासित करने वाली माँ ही है। “तोहि मोहि नाते अनेक मानिए जो भावे।”

वाह ! वाह ! माँ ! जीवन के लिए है, जीवन में प्रविष्ट होने के लिए है ! सेवा के लिए है ! अनिष्ट निवारण के लिए है ! अनिष्ट पलायन के लिए ही नहीं आत्मानुभूति के लिए भी है। माँ ! तू ही खरेखर नारी है।

प्रश्न होता है विश्व के प्रत्येक इन्सान पर खान-पान से लेकर जन्म-मरण और संयोग-वियोग से लेकर सुख-दुःख व चलने-फिरने आदि प्रत्येक क्रिया में इस महान नारी माँ की क्या देन है ?

उपर्युक्त का विश्लेषण करने से पूर्व माँ की उपलब्धियों पर दृष्टिपात करते हैं तो अवगत होता है कि माँ की महिमा अपरिमित, असीम, अवर्णनीय और शब्दातीत है।

जन्म के पश्चात जीवन को सुवासित करने के लिए जो विशुद्ध क्रिया जिसके द्वारा की जाती है उसका ही नाम माँ है। फ्रेञ्च सम्राट नेपोलियन बोनापार्ट को कहना पड़ा—

“The future destiny of the child is always the work of the mother.”



“बच्चे का भाग्य सदैव उसकी मां द्वारा निर्मित होता है। वह अपने बच्चे बच्चियों को शिक्षा देती है। कारण मातृप्रेम है। मां अपने बच्चे के जीवन का किस प्रकार ऊर्ध्वीकरण करती है यह समझना भी नितान्त आवश्यक है। एक घटना याद आरही है—ग्रीष्म ऋतु की अत्युत्कट सख्त धूप पड़ रही है। पृथ्वी गर्मी के मारे तप्त लोहे की भाँति ऊष्ण हो रही है। राजमार्ग सूने पड़े हैं, पशु वर्ग भी वृक्षों की शीतल छाया में आराम कर रहे हैं। पक्षीगण तरु डाल में पत्तों के मध्य छिपे बैठे हैं। गृहस्थ वर्ग खा-पीकर आराम करने की तैयारी कर रहा है।



उपाश्रय से भद्रामाता अपने पुत्र अर्हन्नक मुनि का चन्द्रमुख देखकर गहन आनन्द अनुभव करती हुई स्वस्थान की ओर चली गयी है।



साधु मुनियों को मध्याह्न के पश्चात् ही भिक्षा-गोचरी के लिए निकलना चाहिए। अर्हन्नक मुनि भी इसीलिए अन्य साधुओं के साथ गोचरी के लिए निकले।

किन्तु हाय ! कभी जिसने धूप में पैर न रखा हो वह नंगे पैर कैसे चल सकता है ? अल्प दूरी तक चलते ही उनके पैरों में छाले पड़ गये। केश विहीन मस्तक तो मानों सूर्य के असह्य प्रचंड ताप से अभी ही फट जायेगा, ऐसा लगता था। उनका मुँह लाल सूर्य हो गया। सारा शरीर मानों मोम की भाँति गलकर प्रस्वेद से तरबतर हो गया किन्तु अन्य मुनि तो इसी समय भिक्षा पर जाने के अभ्यस्त थे। अतः उन्हें इतना कष्टकर न लगा। आज तक अर्हन्नक मुनि भिक्षा मांगने

नहीं जाते। जैसे गृह में बैठे सभी सामग्री प्राप्त होती उसी प्रकार यहां भी पाने लगे थे। अतः उन्हें साधु जीवन की इस कठिनाई का कोई अनुभव नहीं हुआ।

दूसरे मुनि तो कड़क धूप में भी शांति पूर्वक चल रहे हैं और मैं नहीं चल सकता यह तो कायरता है। ऐसा विचार आत्माभिमान अर्हन्नक मुनि को आया और वे भी मन को दृढ़ कर चलने लगे। किन्तु शरीर तो अभ्यासाधीन है, केवल मन में निश्चय करके ही शरीर से विचारा हुआ काम नहीं लिया जा सकता है। इस कठिन परीक्षा में प्रथम बार ही कैसे उत्तीर्ण हो सकते थे? योग्य प्राथमिक विद्यालय के हैं और करना चाहते हैं विश्वविद्यालय उत्तीर्ण। असम्भव।

अर्हन्नक मुनि की अभिलाषा होते हुए भी आगे चलने में अशक्त होने से अन्य मुनियों से पीछे रह गये। थोड़ा विश्राम लेने के लिए एक हवेली की शीतल छाया में जाकर खड़े हो गये।

भवन के गवाक्ष में आसीन एक तरुण स्त्री जो उस घर की मालिक थी ने अर्हन्नक मुनि को इस दयनीय हालत में खड़ा देखा। उसने सहानुभूति पूर्वक मुनि को बुला लाने हेतु दासी को प्रेषित किया।

मुनिराज ! ऊपर पधारिये ! दासी ने आकर करबद्ध प्रार्थना की।

अर्हन्नक मुनि ने समझा भिक्षा देने हेतु बुलाती हैं अतः वे बिना कुछ बोले दासी के पीछे-पीछे चल पड़े।

भवन में प्रविष्ट होते ही उसकी शीतलता से अर्हन्नक मुनि को अत्यधिक शान्ति प्राप्त हुई। कुतूहल से उत्सुकतापूर्वक अग्रसर हुए। वहां अनेक प्रकार के सुन्दर चित्र टंगे हुए थे। स्थान-स्थान पर फूलदान सजाये हुए थे, जिनमें से फूलों व इतर की सुगन्ध आ रही थी। दरवाजों पर खस-खस के परदे लटक रहे थे। जिनमें कर्मचारी-वर्ग

पिचकारियों से पानी छिड़क रहे थे। जिसमें से प्रवाहित ठंडी व सुगन्धित पवन हृदय को असीम शान्ति पहुंचा रही थी।

अर्हन्नक मुनि को लगा कि सच्ची शान्ति तो यहाँ है। भानु के भयंकर ताप में भटक कर भिक्षा माँगने में क्या शान्ति संप्राप्त हो सकती है? इससे तो मात्र कायाकष्ट ही होता है। विचारों में डूबे हुए वे दासी के पीछे-पीछे रसोई घर के आगे जा पहुँचे। दासी उन्हें वहाँ छोड़कर चली गई। वह तरुणी मुनि को आहार देने निमित्त आकर तैयार खड़ी थी। अर्हन्नक मुनि के पधारते ही वह मिष्ठान्न आदि की थाली ले आई और मुनि के पात्र में देने लगी मिठाई देते हुए वह बोली—मुनिराज! ऐसी प्रचण्ड धूप में बाहर निकल कर अपनी कोमल काया को क्यों निष्कारण संतप्त करते हैं? अनुकम्पा कर आप अभी यहीं रुक जाएँ, धूप ढल जाने पर जहाँ जाना हो जा सकते हैं।

ताप से त्रस्त अर्हन्नक मुनि को यह बात युक्ति-संगत और बड़ी मधुर लगी। वे इसका कुछ भी प्रत्युत्तर न दे चुप रहे।

“मौनम् स्वीकृति लक्षणम् ॥ स्त्री उनका मन समझ कर मकान के एक एकान्त कमरे में ले गयी और कहा—आप यहाँ आहार पानी कर थोड़ा आराम करें। यह कहकर वह चली गई।

अर्हन्नक मुनि इस सहज संप्राप्त सुविधा में लुब्ध होकर आहार पानी करने के अनन्तर आराम करने लगे। वे धूप की गर्मी से एक तो त्रस्त थे और गरिष्ठ आहार करने से भी। शीतल स्थान पर नींद के खरट्टे लेने लगे। ऐसा लग रहा था मानों कुम्भकर्ण जो “विश्व खिलाड़ी नींद विजेता” हैं को पराजित करने के प्रयास में हो।

मुनिराज का ऐसा स्वागत करने वाली नवयुवती का पति वर्षों से व्यापार के निमित्त विदेश में भटक रहा था। उसकी विरहाग्नि से संतप्त स्त्री को अर्हन्नक मुनि के रूप और यौवन ने मुग्ध कर दिया। चिरकाल से वशवर्ती रखा हृदय अब वश में न रह सका। मुनि का



करती थी। पुत्र के प्रति मोह न छोड़ सकी संसार की दृष्टि में साधु बना हुआ अर्हन्नक अभी तो उसे अपना पुत्र अर्हन्नक ही लगता था। भिक्षा से उसे वापस न लौटा जानकर साध्वी माँ के हृदय को बड़ा आघात लगा। अर्हन्नक कहां गया होगा? उसका क्या हुआ होगा इन विचारों में उसे चैन न पड़ा। रात्रि बीती दूसरा दिन आया। राह देखती देखती वह थक कर चूर हो गई पर अर्हन्नक द्रष्टव्य नहीं हुआ। उसके मन की आतुरता बहुत बढ़ गई। वह गोचरी लेने गई वहाँ ताक-ताक कर यत्र तत्र सर्वत्र देखने लगी कि कहीं भी अर्हन्नक दिखाई दे? पर अर्हन्नक नहीं दिखाई दिया।

भद्रा माँ जिसे स्वयं के पुत्र की अपरिहार्यता थी। अन्य से उसका क्या अभिप्राय। उसका तो वह जीवनलाल है, जीवन प्राण है। इन्हीं से सम्बन्धित कुछेक भाव अधोलिखित मेरी कविता “लाल-लाल” में में संप्राप्त होते हैं—

प्रातःकाल प्रज्वलित लाल,  
 लाली लहराती लैला सी लाल-लाल ।  
 पिया परदेश गमन लाल,  
 परिश्रमित पैदाइस परम लाल-लाल ।  
 स्वदेशागमन स्वामी लाल लाल,  
 सिंधु सलंध्य शुभारम्भ लाल-लाल ।  
 सलिल संस्थित शशि लाल,  
 शक्तिवान शिशु शीतलता लाल-लाल ।  
 मुहूर्त मंगलमय लाल,  
 पंचांग पावन-प्रवेश लाल-लाल ।  
 स्त्री सुहाती सल्लोक लाल,  
 किए अर्पित अनोखे रत्न लाल-लाल ।  
 कुशल कथन कहा लाल,  
 जबर जगाई ज्योति लाल-लाल ।

ममता ने मांगा मम लाल,  
 असंख्य है पर अनुचाहे लाल-लाल ।  
 शुभ साक्षात्कार छिपा लाल,  
 प्रफुल्लित प्रस्फुटित पाके लाल-लाल ।

भद्रा माता का मन इससे विह्वल हो गया । धीरे-धीरे उसका मानस धर्म से न्यून हो गया और सतत् अर्हन्नक-अर्हन्नक की ही रट लगाने लगी—भगवान के नाम की तरह । एक दिन प्रातःकाल वह अर्हन्नक का नाम रटती हुई नगर के बाजारों में निकल पड़ी और अर्हन्नक...अर्हन्नक पुकारने लगी । सभी लोग राह चलते हुए साध्वी को इस प्रकार पुकारते हुए देख विचार में पड़ गए । इस साध्वी को क्या हुआ ? इस प्रकार बाजार में चिल्लाती हुई क्यों फिर रही है ? दिन भर खाना-पीना भूल कर भद्रा साध्वी सारे गांव में फिरी परन्तु कहीं भी अर्हन्नक को नहीं देखा—न किसी ने उसका पता बतलाया । दूसरे दिन भी भद्रा इसी प्रकार ढूँढने निकली । लोगों ने उसे पागल समझ लिया । कोई उसकी हँसी उड़ाने लगा । कई उदण्ड लड़के उसका पीछा कर उसे सताने लगे ।

इस प्रकार भान भली हुई भद्रा अर्हन्नक का अधिक से अधिक स्मरण करने लगी और दुनियां उसे अधिकाधिक पागल मानने लगी । किन्तु पुत्र के लिए उसके हृदय में कितना प्रेम भरा था ? और इसी प्रेम के पीछे वह पागल बनी, इस बात को कौन जानता था ? और किसे जानने की आवश्यकता थी !

इसी स्थिति में कितने ही मास और वर्ष व्यतीत हो गए । एक ओर अर्हन्नक संसार के विविध सुख भोग रहा है, दूसरी ओर भद्रा पागल बनी हुई उसे आँखों से देखने के लिए गली-गली भटक रही है । संसार की क्या विचित्रता है ? पुत्र और मां की रामायण ही विचित्र और अलग-अलग है ।

एक दिन अर्हन्नक हवेली के गवाक्ष में बैठा हुआ नगर-चर्या देख



रहा था। इतने ही में लड़कों का एक झुण्ड चिल्लाता हुआ उसकी हवेली की ओर ही आता दिखाई दिया। उनके बीच में मँले-कुचैले वस्त्रों वाली कोई स्त्री पुकार रही थी किन्तु बच्चों की आवाज में उसकी आवाज सुनाई नहीं दे रही थी। वह साध्वी पत्थर या स्तम्भ जो भी देखती अर्हन्नक अर्हन्नक कहती हुई उसके साथ चिपक कर



बिलख पड़ती। वाह रे ! माँ का प्रेम। उस हवेली के निकट आते ही एक स्तम्भ से अर्हन्नक-अर्हन्नक बोलती हुई लिपट गई उसका माथा फूट गया। उसमें से रुधिर की धारा बहने लगी और वह बेहोश हो गिर पड़ी। उदूण्ड बालकों के लिए तो यह प्रतिदिन का दृश्य था। अतः उन्हें कोई दया नहीं आई परन्तु ऊपर बैठे अर्हन्नक से यह सहन नहीं हुआ। वह शीघ्रता से दौड़ते हुए नीचे आए। उस समय साध्वी कुछ सचेत हा गई और मन्द स्वर से अर्हन्नक-अर्हन्नक बोल रही थी। अर्हन्नक ने देखा यह तो अपनी ही प्यारी माँ, पवित्र साध्वी भद्रा सती है।

माता ! तुम्हारी यह दशा ! किसने की ? वह एक वस्त्र के पल्ले से हवा करने लगा। आंखों में अश्रुओं की अजस्र धारा प्रवाहित हो गई। भद्रा अभी सचेत अवस्था में भी अर्हन्नक-अर्हन्नक का जाप कर रही थी। उसके अन्तर में, उसकी नाड़ी में, उसकी नस-नस में अर्हन्नक का ही स्मरण था। सचेत होते ही अर्हन्नक उसके चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा—माँ यह रहा तुम्हारा हतभाग अर्हन्नक ! जिसके लिए तुम सब कुछ परित्याग कर गली-गली में भटक रही हो। मेरे मानव जीवन को धिक्कार है। मेरे जैसे पुत्र को धिक्कार है कि उसने स्व कर्तव्य को त्याग दिया। ओह माँ ! .....ओह माँ !

अर्हन्नक ने लज्जा से नतमस्तक होकर कहा—माँ ! मैं साधु

जीवन छोड़ कर यहाँ रह गया था। तुम ऊपर पधारो तो मैं सारी बात सुनाऊँ। ऊपर चलो !

भद्रा बोली बेटा ! तुम्हारे विलास भवनमें आना मुझे अकल्प्य है। तुम संयम त्याग कर विलासी जीवन में कैसे तत्पर बने। क्या अब भी तुम्हारे में भोग-लालसा बची है ? भले तुम्हें इन्द्रियों के भोग भोगने हों तो भोगो किन्तु इसमें बचा हुआ पुण्य भी हार जाओगे। माता के इन हृदय संवेद्य शब्दों ने अर्हन्नक की सुषुप्त आत्मा को जागृत किया। इस रोगी पुत्र को माँ के इन प्रेम भरे शब्दों ने सौ चिकित्सकों का कार्य कर दिया। उसने कहा—माता मैं भूला ! केवल ताप के भय से आराम की शोध में पड़कर मैंने अपना सारा चरित्र ध्वंस कर लिया किन्तु आज आपके शुद्ध स्नेह ने मुझे सचेत कर दिया है। मैं फिर से चरित्र ग्रहण करूँगा। किन्तु माता इस प्रकार के अनेक दुःख सहन कर रिस-रिस कर मरने की बजाय मैं अब अनशन ही करूँगा। और देह की दुष्ट वासनाओं का अन्त कर दूँगा।

क्योंकि माँ ! मेरा वासनाग्रस्त मन पिंजड़े के सिंह के समान चंचल रहता था। किन्हीं दासों का ऐसा दलन नहीं होता जैसा वासना के दासों का। मुझ से बढ़कर राह से भटका हुआ और कौन है जो अपनी वासना के पीछे चलता है। अब मैं जड़ से राग-द्वेष नष्ट कर दूँगा, इसी में वासना का मरण है।

जब उसने यह कहा उसी समय उस स्त्री ने घर में से आकर साध्वी जी को वन्दन किया और अर्हन्नक को कहने लगी हे महाभाग ! इस सारे प्रनर्थ की मूल मैं हूँ। मैंने ही तुम्हें लोभ में डालकर चरित्र-भ्रष्ट किया, किन्तु मेरे हृदय में एक भावना थी कि एक दिन मैं पूर्व के मुनिवेश में तुम्हें वापस भेजूँगी और इसी आशय से जिस वेश में तुम यहाँ आये थे। उस वेश को मैंने अत्यन्त सावधानी से संभाल कर रखा है। आज मैं भी तुम्हारे साथ चरित्र ग्रहण कर अपने पापों का प्रायश्चित्त करना चाहती हूँ।

अर्हन्नक मुनि विलास में डूबी हुई इस स्त्री की यह वाणी सुनकर आश्चर्यचकित हो गए। उनके हृदय में शेष निर्बलता भी इन वचनों से समाप्त हो गई और उन्होंने फिर से मुनिवेश धारण कर लिया। वह स्त्री और भद्रा माता दोनों उसके सामने देखती रही और आँखों से अश्रुधारा बह निकली। इसलिए मैं कहता हूँ नारी महान् है अति महान् !

जननी जननी है, जीवित वस्तुओं में जो सर्वाधिक पवित्र है। अंग्रेज कवि एस० टी० कोलरिज का भी कथन है—A mother is mother still the holiest thing alive. अर्हन्नक मुनि फिर से साधु बन गए। वह स्त्री भी साध्वी बन कर भद्रा माता के साथ साध्वी संघ में रहने लगी।

अर्हन्नक मुनि किसी भी परिषह से नहीं डरते। अच्छे-अच्छे दूढ़ संयमी मुनियों से भी वह परिषह सहन करने में आगे निकल जाते और उसमें अपना कल्याण मानते। वे जिस प्रकार पतित हुए थे उसी प्रकार ऊँचे भी उठ गए। शेरनी की कुख से उत्पन्न होकर शेर जैसा ही उन्होंने कार्य किया लोमड़ी की तरह नहीं। ऐसे माँ-पुत्र के जीवन को ग्रहण करने के लिए आज भी “अरणिक मुनिवर चाल्या गोचरी” सज्जाय गाई जाती है। आज भी अनेक व्यक्ति उनके जीवन से लाभान्वित होते हैं और आने वाली पीढ़ियाँ भी आलोक प्राप्त करेंगी।

अभिप्राय यही कि माँ की ममता…… कितनी विशाल है। गज में ऐरावत, पशुओं में मृगेन्द्र, पुष्पों में अरविन्द, पक्षियों में वेणुदेव गरुड़, सरिता में गंगा, मंत्र में ॐ और जीवन में माँ का इस जगत् में बहुत महत्व है। माँ यानि जन्म के बाद जीवन को सुवासित करने के लिए जो विशुद्ध क्रिया जिसके द्वारा की जाती है उसका नाम माँ है।

माँ-पुत्र अपने जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति को उन्नति के अच्युत

चरम शिखर पर पहुँचाने वाली व उसके जीवन को मर्यादा की सरल फांसी में रखने वाली है। यही नहीं उसके जीवन मार्ग को आलोकित करने वाली प्रज्वलित प्रेम दीपिका है जो स्वयं उसकी लौ में जलकर अपने पुत्र के जीवन को आलोकित करती है। वह जीवन को सुसज्जित भी करती है। जीवन के प्रत्येक चौराहे पर मार्ग दर्शाती है। साथ ही साथ लिप्सा, दानवीय वृत्ति, संग्रह खोरी आदि हृदयंगम प्रवृत्तियों को निकालती है और मनुष्यता की प्राण-प्रतिष्ठा करती है।

इसी के साथ मां प्रेम रूप है, और प्रेम माँ रूप। दोनों में सूरज और धूप की भांति अभेदता है। माँ का प्रेम भगवान की तरह ही अनिवर्चनीय है।

“जग में सब जान्यौ परै, अरु सब कहै कहाइ।

पै जगदीश रु प्रेम यह दोऊ अकथ लखाइ ॥

(रसखान-रत्नावली)

पृथ्वी के ऊपर प्रकाश का अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त करने वाली जननी जीवन का पाया है। मकान का पाया नींव की ईंट है, यदि नींव की ईंट कमजोर है तो कंगूरा किस प्रकार से खड़ा हो सकेगा। यदि कारणवश खड़ा भी हो गया तो जल्द ही गिरने की संभावना हो जायेगी।

कंगूरे में यदि “सत्यं शिवं सुन्दरम्” का गुण विद्यमान करना है तो सर्वप्रथम नींव की ईंट में यह गुण कूट कूटकर भरना नितान्त अपरिहार्य है। हमारे मानव जीवन की नींव माँ है। माँ के संस्कार कच्चे होंगे तो मानव जीवन का ऊर्ध्वकरण होगा ही नहीं, कभी नहीं। जीवन का पाया ही शिथिल है तो मानव की प्रत्येक प्रवृत्ति दुष्टवृत्ति में परिवर्तित हो जायेगी। राष्ट्र के लिए अनहितकर होगी। भले ही मानव-समाजके मध्य ख्याति प्राप्त करले लेकिन अन्त में नींव की ईंट

शक्तिरहित होने के कारण कंगूरा गिर जायेगा, जीवन विध्वंस हो जायेगा ।

भवन की नींव में कोई भी ईंट लगाई जाती है वह कंगूरे को मनमोहक बनाने के लिए लगायी जाती है । उसी प्रकार मां कोई भी और कैसा भी प्रयत्न करती है तो पुत्र का निःश्रेयस करने के लिए करती है । मां पुत्र में भी हार-जीत होती ही रहती है ।

अपने किसी प्रतिपक्षी को दबाकर अपने मनोऽनुकूल उद्देश्य तक पहुंच जाये तो उसको विजय कहते हैं और.....जब विरोधी प्रबल हो जाये और अपने को हमारे लक्ष्य तक नहीं पहुंचने दे । ऐसी परिस्थिति में वे तब अपने आक्रोश एवं निराश होकर स्वयंकी पराजय स्वीकार कर लेते हैं । मनुष्य के प्रयत्नों का अन्तिम किनारा हार या जीत ही तो है ! क्यों भैया । असत्य तो नहीं कहा ! “बराबर” ।

शेष तो कर्म प्रवाह संघर्ष है या प्रतिपक्ष को अधीन करने की लड़ाई है । वह अपने प्रयत्नों की सफलता के लिए इसलिए चिंतित होता ही रहता है । हाँ यदि आप व्याकुल न हों तो आपका संघर्ष निर्वल हो सकता है और अनुकूल व उपयुक्त वातावरण सम्प्राप्त होते ही प्रतिपक्ष उसको दबा सकता है । परन्तु सर्व संघर्षों में यह जटिल बात घटित नहीं हो सकती । जहां मां-पुत्र का रूप हो तो वहां यह समस्या अधिक विषम हो जाती है । नितांत छोटी से छोटी बातों व कार्यों में भी उसकी परीक्षा कर सकते हैं । जैसे :—

आह्लाद ही आह्लाद ! दोनों प्रसन्न । मां मस्ताने लड़के को खिला रही है । लुका-छिपी की क्रीड़ा कर रहे हैं । बेटे से मां पराजित हो गई, लेकिन वह बुरा नहीं मानती । हार होने पर भी उसके साथ प्रेम । वह भी अपरिमित । यद्यपि यहाँ बालक के साथ एक प्रकार की विरोधी भावना ही होती है परंतु लड़ाई की नहीं । प्रतिपक्षी होते हुए भी उसके प्रति प्रीति और उसको महान् मनुष्य बनाने की भावना अत्युत्कृष्ट होती है । जैसा कि एच. डब्ल्यू. बीचर ने कहा कि “जननी

का हृदय बालक की पाठशाला होता है” उसके अन्तर में अनुकम्पा की वृत्ति होती है और मन में कलुष भाव नहीं होते हैं ।

“अनुकम्पा संसिदो य परिणामो चिन्तहि पत्थ कलुसं ।”

परम भक्त कवयित्री मीराबाई गाती थीं—

“प्रीति की रीति निराली”

उपकार, करुणा, सम्बेदना और पवित्रता माँ के हृदय में युग-युग से सेमाहित है । माँ कभी उपकार की भावना से कुछ नहीं करती है । वह तो उसका स्वतः प्रवर्तित स्रोत है । करुणा तो माँ के तन-मन और आत्मा से क्षण-क्षण में ही उमड़ती रहती है । सम्बेदना ही वास्तव में माँ की प्रतिकृति है । माँ की सम्बेदना ने कभी अपने और पराये में भेदभाव नहीं रखा है । पवित्रता माँ के अंग अंग से भलकती है । उसका स्निग्ध हृदय मस्तक की पवित्र दीप्ति बनकर चमकता है । इसीलिए इन सब गुणों का साकार दर्शन माँ की ममता में होता है । मेरी भी यही भावना है—

ममता से भरी माँ को देख, हृदय मेरा नृत्य करे ।

ऐसी पावन माँ की सेवा में, मुझ जीवन का अर्घ्य रहे ॥

माँ ! कोई इसे माँ कहता है तो कोई माता व जननी से सम्बोधित करता है । कोई मम्मी तो कोई मातृ, अम्मा, मातु, माईका, मदर, बू, वाल्दा आदि से । कितने बताऊँ ..... उनकी कोई संख्या-सीमा नहीं । यद्यपि नाम विभिन्न हैं लेकिन सत्यता यह है कि ये सब नाम माँ के ही हैं । “मुँडे मुँडे मति भिन्ना” । अरे माँ को तो छोड़ो परमात्मा भी विभिन्न नाम वाला है । अधोलिखित परात्म सम्बोधन का वाचन करें, जिसमें षट्दर्शनों को स्पष्ट किया गया ।

“पं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।

बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैयायिकाः ।

अर्हं नित्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः ।

सोऽयं वो विदधानु वाञ्छित फलं त्रैलोक्यनाथः प्रभुः ॥”

शैव लोग शिव, वेदान्तदर्शन ब्रह्म, बौद्ध-बुद्ध, न्याय दर्शन कर्ता, जैन शासन जिन के अनुयायी अर्हन् और मीमांसक "कर्म" कहकर उस परमात्मा की उपासना करते हैं ।

इसे ही ईसाई धर्म में 'गाड' और इस्लाम धर्ममें खुदा कहा गया है । सिक्ख लोग "कर्तार", कबीर पंथी "साई" और पारसी धर्मालम्बी अशोज-रथुस्त कहते हैं ।

दूध के भी अलग-अलग राष्ट्रों व प्रान्तों में पृथक्-पृथक् नाम है । "नहीं है ।" ओह ! लेखनी से लिखा वह असत्य नहीं हो सकता । दूध को कोई क्षीर, दुग्ध तो कोई हालु, पालु, पेर, मिलक आदि नाम से पुकारते हैं ।

क्या भाषा-भेद के कारण परमात्मा अथवा दूध का गुण बदल जाता है ? "नहीं" वैसे ही माँ के नाम पृथक्-पृथक् होने से उसके गुण में कोई भेद नहीं आता ।

"माता एवं हतो हन्तिः, माता रक्षति रक्षितः । माँ ! वह एक ऐसी बहुमूल्य वस्तु है जिसको छोड़ देने पर हमारे अमोल जीवन का नाश हो जाता है और इसको सुरक्षित रखने पर वह जीवन की रक्षा करती है । इसलिए—

"माँ मंगलम्,

माँ लोगुत्तमा" के नाम से अभिहित किया जाता है ।

और तभी तो इसको दूसरे शब्दों में मनुष्य के उन्नत जीवन की स्रष्टा के नाम से सम्बोधित किया गया है । "नहीं माँ बिना कुल" यह उक्ति सार्थक करती माँ सन्तानों की केवल जन्मदात्री ही नहीं उसके जीवन की जतन करने वाली "जनेता" भी है ।



दीपक-रहित मन्दिर, घृत बिन भोजन और अहिंसा-रहित राष्ट्र कैसा ? शशि-रहित रैन, रैन बिन रजनी, बिना रजनी के शशि भी कैसा ? यही नहीं कुच रहित हार, हार बिना काजल और काजल बिन शृंगार भी कैसा ? सत्य कहता हूँ कि पुत्र बिन माँ, माँ-रहित परिवार कैसा ?

जन गण मन के अमर शब्दों में शिल्पी कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा—जीवन की महत्वाकाक्षाएँ बालकों के रूप में आती हैं इसी-लिए माँ बालकों की सेवा और उन्हें प्रेम देने में हिचकती नहीं ।

शिशु की सेवा करने से माँ को 'शक्ति' और सदा सम्मान देने के कारण उसे 'माता' कहते हैं । प्राचीन भारतीय धार्मिक शास्त्र भी पुकारते हैं ।

“शिशोः शुश्रूषणाच्छक्तिर्माता

स्थानान्मानाच्च सा ॥” (स्कंदपुराण)

माँ का बालक, प्रकृति की अनमोल देन है । सुन्दरतम कृति है, सबसे निर्दोष वस्तु है । बालक मनोविज्ञान का मूल है, शिक्षक की प्रयोगशाला है । मानव-जगत् का निर्माता है । बालक के विकास पर दुनिया का विकास निर्भर है । बालक की सेवा विश्व की सेवा है ।

“बालक राष्ट्र की मुस्कराहट है ।” महान् भारतीय राजनीतिज्ञ चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने उक्त बात ठीक ही कही है । बच्चे राष्ट्र को आत्मा हैं, क्योंकि यही हैं, जिनको लेकर राष्ट्र पल्लवित हो सकता है, यही है, जिनमें अतीत सोया हुआ है, वर्तमान करबटें ले रहा है और भविष्य के अदृश्य बीज बोये जा रहे हैं ।

ऐसे बालकों पर अविरल वात्सल्य वर्षा कर और उसके बदले में कोई भी मनोऽकांक्षा रहित अभिलाषा के बिना बालक को अनेक महा दुःख सहन कर वृहद् त्याग करने वाली माँ का मूल्य कोई माई का लाल आंक सकता है ? अनवरत अव्याहत अनेक प्रतिकूलताएँ, विडम्बनाएँ और कठिनाइयाँ सहन करके भी राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई इन्सान



का—बच्चे का पालन पोषण करती है। क्या उस कष्ट व उत्सर्ग सहन करने वाली का मूल्य कोई आदम का बाप या बेटा लगा सकता है ?

जिसके हास में जीवन-निर्भर का संगीत है एवं राष्ट्र का उदय जिस नारी से होता है उसका मूल्य लगा सकने में अल्पांश भी कोई सक्षम है ? शायद ही ।

शायद ही क्या, कोई भी नहीं लगा सकता ? असम्भव है ! अशक्य है !

“मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणं,  
चिन्ता समं नास्ति शरीरशोषणं ।  
भार्या समं नास्ति शरीरतोषणं,  
विद्या समं नास्ति शरीरभूषणम् ॥”

माँ के समान शरीर का पालन-पोषण करने वाली, चिन्ता के समान देह को सुखाने वाली, स्त्री के समान शरीरको सुख देने वाली और विद्या के समान शरीर को अलंकृत करने वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है। अमेरिकन कवि व दार्शनिक आर. डब्ल्यू. एमर्सन का अग्रिम वाक्य अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त है “Men are what their mother made them अर्थात् मनुष्य वही होते हैं जो उनकी माताएँ उन्हें बनाती हैं।

यदि बच्चा कोई गलती भूल कर भी कर दे तो माँ शांत भाव से क्षमा कर देती है। और उसी क्षमा के कारण दुनियां में उसका नाम होता है, वस्तुतः क्षमा के आगे बालक-बालिकाओं को क्या असंख्य शत्रुओं को भी नतमस्तक होना पड़ता है। भगवान् महावीर ने कहा। ‘क्षमा वीरस्य भूषणम्’ क्षमा रूपी शस्त्र जिसके हाथ में सुशोभित है उसका शत्रु बिगाड़ क्या सकता है ?

“क्षमा खड्गं करे यस्य दुर्जनः किम् करिष्यति”  
क्षमा ही नहीं उपकार भी.....

माँ उपकार करती है पर निःस्वार्थ भाव से। उपकार भी इसी भावना से करना चाहिए। यदि उसके बदले में लेने की भावना हो तो वह उपकार, उपकार नहीं कहलाता। कविवर रहीम ने भी यही कहा है—

“यो रहिम सुख होत है, उपकारी के अंग ।  
बांटन वारे के लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ॥”

एक नदी के तट पर बुढ़िया माँ ने एक भोंपड़ी बनाई। भोंपड़ी इतनी छोटी थी कि उसमें एक ही व्यक्ति रह सकता था। एक दिन मूसलाधार वर्षा हुई। माइ भीतर बैठी हुई थी। एक व्यक्ति तीव्र गति से दौड़ता हुआ आया और भोंपड़ी के द्वार से लगकर खड़ा हो गया। वह ठंड के मारे ठिठुर रहा था।

माई ने भीतर बैठे-बैठे आवाज लगाई—बेटा ! जल्दी भीतर आ जाओ। अपने भीगे वस्त्रों को उतार कर इन्हें पहन लो और यहीं पर रहो। जब तक वर्षा न रुक जाय। सिकुड़ कर बैठ जाओ और वर्षा का समय व्यतीत करो।

वाह ! हृदय में एक अपरिचित के प्रति इतनी सहानुभूति, करुणा और परोपकार की भावना है तो स्वयं के पुत्रके प्रति...। वेद व्यासजी ने कहा है कि—“परोपकारः पुण्याय”, परोपकार जैसा कोई पुण्य नहीं है। भक्ति काल के महाकवि तुलसीदास जी तो डंके की चोट कहते हैं—

“परहित सरिस धर्म नहिं कोई”

स्वयं के सुख स्वार्थ का परित्याग करके पुत्र-पुत्री के लिये छत्र-के रूप में निर्मित होने वाली और उसकी जीवन-वाटिका को सुवासित करने वाली, उसी में ही तन्मय होकर उसी के सदृश बनने वाली और उसके जीवन को सुगन्धित पुष्पों से सजाने वाली मालिन की तरह माँ सन्तानों के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होती रहती है। माँ अकेली होती है परन्तु सफर उसका व उसके पुत्र का लम्बा होता है।

पर मंजिल पैर तले है । वह इस विश्वास को समाप्त नहीं होने देती । क्योंकि वह जानती है कि बालक देवलोक से आया है । वह छल-कपट से अनभिज्ञ है ।

कृष्ण भक्ति काव्य धारा के अग्रणी कवि सूरदास आदि अष्ट-छाप के कवियों ने भी श्री कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन में शैशव काल, यौवन काल और प्रौढ़ काल में शैशव काल को ही महत्त्वपूर्ण माना । उन्होंने मुख्यतः कृष्ण की बाल तथा किशोर जीवन की लीलाओं का वर्णन ही किया है । इस कारण इनकी रचना में वात्सल्य तथा माधुर्य भाव का ही अधिक प्रभावशाली चित्रण हो पाया है । इन पुष्टिमार्गीय कवियों के कृष्ण भक्ति के काव्य के वर्णन में कृष्ण की बाल-लीलाओं में यशोदा माँ के वात्सल्यपूर्ण हृदय की मनोरम भाँकी मिलती है ।



“मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायौ”, “मैया कवहु बढैगी चोटी” आदि ऐसे अनेक पद हैं जो पाठक के मन को सहज ही स्पर्श कर लेते हैं । तृपित हृदय को रस-सिक्त करने में पूर्ण सफल हो जाते हैं ।

बच्चा जो भी कहता है, माँ सुन लेती है । निष्कण्ट भाव से अपने उद्गारों को प्रगट करता है । अर्थात् बालक शुद्ध और ब्रह्म रूप है । ईसाई धर्म के संस्थापक ईसा ने तो यह भी कहा है कि यदि स्वर्ग जाने की इच्छा हो तो पहले बालक बनो । बालक तो निर्धन का सबसे बड़ा धन है ।

यह ब्रह्म रूप बालक भी इसी माँ से उत्पन्न हैं ।

पुष्प खिलता है कब और कैसे ? बीज का जब भूमि में पदार्पण होता है । जैसे विवाह मण्डप में वर-वधू का होता है । समय पर अंकुर फूट निकलते हैं । सभी उसके ब्रह्म स्वरूप को देखते हैं, जड़ को नहीं । जड़ कितना कष्ट पाती है । पुष्प को कोई कांटा न लगे इसका



वह हर पल ध्यान रखती है। स्वयं कीचड़ में रहकर पुष्प को प्रस्फुटित करने की सोचती रहती है। लोग पेशाब खाना समझकर उस पर पेशाब करते हैं परन्तु वह बिना किसी की चिन्ता किए आकाश की भाँति स्वावलम्बी बनकर पुष्प को कीचड़-कांटों से बचाकर, बड़ा कर उससे कहती है कि हे पुष्प तुम यहीं आकांक्षा करना कि या तो तुम वीतराग के चरणोंमें समर्पित होकर मुझे धन्यकर देना अथवा राष्ट्र की सेवा में लग जाना। राष्ट्रकवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी का “पुष्प की अभिलाषा” गीत जिसे सुनकर अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध भारतीय जन मानस को देश भक्ति हेतु प्रेरित कर दिया था।

“चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।

चाह नहीं, प्रेमी माला में बिध प्यारी को ललचाऊँ ॥

चाह नहीं, सम्राटों के शव पर, हे हरि डाला जाऊँ।

चाह नहीं, देवों के सिर चढूँ, भाग्य पर इठलाऊँ ॥

मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ में देना तुम फेंक।

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक ॥”

यदि जड़ गीली हो तो ऊपर पुष्पमें शुष्कता कैसे बनेगी। यदि घड़ा जल से भरा हो और बाहर उसमें नमी न हो, यह तो असम्भव है।

यही बात माँ के लिए है। सर्वप्रथम आन्तरिक स्थान (गर्भ) में बच्चे की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् बाह्य जन्म होता है। कितना कष्ट, भयंकर दुःख। दुःख ही दुःख। लेकिन कोई चिन्ता नहीं।

“सचमुच सब कुछ हार गयी वह,

जिसने हिम्मत हारी है।

कमर कसी और कूद पड़ी जो,

उसने बाजी मारी है ॥”

क्योंकि वह जानती है कि देश की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति, जिसका निर्माण राष्ट्र का निर्माण है। जब व्यक्ति का निर्माण होगा

तो परिवार का, गली का, शहर का फिर प्रान्त का और कहीं राष्ट्र का निर्माण होता है। माँ द्वारा दिया संस्कार ही कार्य करता है जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र में वर्षा की बूँदें सीप के मुख में गिरने से सच्चा मोती बन जाती है। बिन्दु विचारा बिन्दु। परन्तु बिन्दु से ही सिन्धु का निर्माण होता है।

अतः प्रत्येक माँ का उत्तरदायित्व है कि वह राष्ट्र के चरित्र-निर्माण में अपनी शक्ति का पूर्ण रूप से सहयोग दे। राष्ट्र की सबसे लघु इकाई व्यक्ति का आचार-विचार, रहन सहन, संस्कार सर्व सुसंस्कृत हों, अच्छे हों, उच्च हों और व्यवस्थित भी।

अनेक व्यक्तियों का यह कहना कि पन्ना धाई ने स्वयं के पुत्र को मरवाया पर राजा के पुत्र की रक्षा की। कैसी क्रूर हृदया थी।

जिस माता ने अपनी सन्तान की सुरक्षा की अवहेलना कर दी। पुत्र को पैदा करके भी उसे अपने स्नेह की छाया देने का साहस नहीं कर सकी। इस प्रकार के कठोर हृदय से युक्त नारी पन्ना धाई किसी भी मनुष्य की माँ कहलाने की योग्यता नहीं रखती। इस कार्य को अमानवीय और मातृस्नेह से रहित कार्य की संज्ञा दी है।

यह ममभना आपकी बहुत बड़ी गलती है। लगता है कि आप अभी तक गहराई में नहीं उतरे। यदि गहराईमें उतर जायेंगे तो आप उस पन्ना धाई माँ के प्रति सहानुभूति का परिचय देंगे।

महाराणा संग्रामसिंह के देहावसान के पश्चात् उनके पुत्र विक्रमाजीत राज्य गद्दी पर आसीन हुए किन्तु अयोग्य होने के कारण मेवाड़ हितेच्छु सरदारों ने राजकुमार उदयसिंह के बालिग होने तक दासी-पुत्र बनवीर को चित्तौड़ के राजसिंहासन पर बिठाया।

परन्तु बनवीर इससे उन्मत्त हो गया। उसकी तृष्णा ने जागृत होकर भयंकर रूप धारण कर लिया। लोभ की वृद्धि, तृष्णा की अभिवृद्धि और आशा की अधिकता ही व्यक्ति के विकास में बाधक बनती हैं। कहा भी है—

“जहा लाहो तथा लोहो लाहा लोहो पवड्डइ” (उत्तराध्ययन सूत्र)

जैसे-जैसे लाभ होता है वैसे वैसे लोभ में बढ़ोत्तरी होती जाती है। वह बनवीर भी सत्ता हाथ में आते ही अपने राज्य को निष्कण्टक बनाने के लिए गुप्त मन्त्रणा करके विक्रमाजीत का मौत से विवाह करवा दिया। अब उसकी भुजाएँ मचलने लगी बालक उदर्यसिंह का कत्ल करने के लिए।

पन्ना धाई पन्द्रह वर्षीय उदर्यसिंह का एवं राजकुमार की सम आयु वाले अपने लड़के का बड़े लाड़-प्यार से पालन-पोषण करती थी। विक्रमाजीत की हत्या के समाचार सुनते ही पन्ना माँ ने राजकुमार को उसी रात्रि में विश्वस्त गुरुओं के साथ नगर से बाहर करवा दिया था।

दीपक के प्रकाश में रात्रि को लगभग बारह बजे होंगे कि हाथ में विषबुभी नग्न तलवार लेकर बनवीर पन्नाधाई के कमरे में आया।

बता ! वह उदर्यसिंह कहाँ सोया है ? बादल-विजली के समान कड़कते हुए पूछा बनवीर ने।

पन्ना धाई का रोम-रोम कांप उठा। शय्या पर उसका पुत्र सो रहा है। अब क्या किया जाय ? एक ओर स्वामिभक्ति दूसरी ओर पुत्र-मोह। एक और कर्तव्य दूसरे ओर ममत्वा एक ओर मेवाड़ मुकट दूसरी ओर.....

यदि उदर्यसिंह जीवित रह गया तो मेरे पुत्र जैसे लाखों बच्चों का प्रजापति बनेगा। पर.....मेरा पुत्र.....मुझे अपने हृदय को पत्थर बनाना होगा। जिसकी कृपा से मेरा और मेरे पुत्र का पालन-पोषण होता है उसको बचाने के लिए अपने पुत्र का बलिदान करना ही पड़ेगा। यदि अपने पुत्र को बचाने के लिए सच्चाई प्रगट कर दूँ तो यह कहीं से भी खोजकर उसका वध कर ही डालेगा। यदि उदर्यसिंह को बचाती हूँ तो मेरा पुत्र.....।

बनवीर ने कड़क कर कहा—“जल्दी बलाओ उदयसिंह कहाँ सोया है ?”

पन्नाधाई ने अपने हृदय को कठोर बनाकर कांपती हुई उंगली से उस शय्या की ओर इशारा कर दिया। एक ही भटके में उसके बच्चे का उस निर्दयी-लोभी के प्रहार से रक्त भारत माता के चरणों का प्रक्षालण करने लगा।

मेवाड़ के गौरवशाली राजवंश के टिमटिमाते हुए अन्तिम दीपक की एक रक्षिका पन्ना धाई की यह कहानी इतिहास के पन्नों पर युग-युग तक चमकती रहेगी।

पन्नाधाई पुत्र के निकट जाकर जैसे ही रोने लगी कि अचानक पुनः उसे उदय सिंह का ख्याल आया। राजमहल से चुपचाप निकल कर राजकुमार उदय सिंह के पास जा पहुंची। उदय सिंह को लेकर

पन्नाधाई राज्य से बड़ी-वड़ी जागीर पाने वाले अनेक सामन्तों के पास गई और आश्रय की याचना की। पर.....पर! एक तरफ बनवीरके आतंक से सभी भयाक्रांत और दूसरी तरफ जब सत्ता हमारे हाथ में थी तब लाखों हमारे अपने थे, जब सत्ता हाथ से निकल गई तब अपना कोई न रहा, वाली बात भी घटित हो रही थी और इसीलिए मेवाड़ के उत्तराधिकारी को अपने आश्रय में रखने के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ।



अरावली के दुर्ग-पहाड़ों और ईडर के कूट पथों को पार करके अन्त में वह मेरु-दुर्ग पर पहुंची।

किलेदार आशाशाह देपुरा नामक युवक की गोदी में बिठाकर आश्रय की भीख मांगी, प्रार्थना की। अवगत नहीं, क्या समझ कर उसने बालक को धीरे-धीरे गोदी से नीचे उतारने का प्रयत्न किया।

उक्त दृश्य आशाशाह की मां से न देखा गया। अपने पुत्र की भीरुता व कायरता से उसे बड़ा दुःख हुआ और सिंहनी की भाँति

गर्जन करती हुई बोली—“आशा ! आज मेरी कुक्षी को तूने गंदा कर दिया । क्या तू मेरा पुत्र है ? मेरा दूध पिया है ? क्या तू मुझे अपनी माँ का गौरव अर्पित कर सकेगा ? बनवीर के आतंक से भयाक्रांत न हो, कायरता का परिचय मत दे । लगता है तू विस्मृत कर बैठा कि हम जैन हैं, शाह हैं और आज शाह के आगे प्राण की भीख माँगने राजा आया है । मेवाड़ का नाथ बनने वाला मेवाड़ की ही प्रजा से अपनी रक्षा चाहता है । उठा बेटा इसे ! गोदी में ले और दिखा अपना शाहपन, अपना वीरत्व, अपना जैनत्व ।

सुषुप्त भाव उद्दीप्त हो उठे । “माँ ! आज तूने मुझे कर्त्तव्य-विमुख होने से बचा लिया । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ माँ ! मैं अपने प्राणों की भी परवाह न करके इस सुकुमार की रक्षा करूँगा ।” आशाशाह बोला ।

मुझे आत्म विश्वास था कि तुम ऐसा ही प्रत्युत्तर दोगे । मेरे आशा.....इसी के साथ माँ ने प्रेम से उसके माथे पर हाथ फेरा ।

अत्यधिक सावधानी से कुमार का संरक्षण करते हुए आखिर आशाशाह ने राजनीति एवं शस्त्रास्त्र संचालन में प्रवीण कर जवान होते ही अन्य सामन्तों की सहायता से युवराज उदयसिंह को चित्तौड़ के राज सिंहासन पर आसीन करा दिया ।

इस प्रकार पन्नाधाई भी एक माँ थी और यह भी एक माँ । मातृत्व दोनों में उमड़ रहा था । एक का अपना पुत्र मर गया पर उसने मेवाड़ के पुत्र की रक्षा की, तो दूसरी ने अपने पुत्र को कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करके अपना आदर्श पेश कर दिया ।

इसलिए ऐसी माताओं का मातृत्व हमेशा अमर रहेगा ।

जिस प्रकार पवन से विक्षुब्ध समुद्र में पड़ा पोत, वाहन कला में प्रवीण नाविक की सहायता के बिना आरोही को उसके गंतव्य तक पहुंचाने में असमर्थ होता है । उसी प्रकार माँ की सहायता के बिना व्यक्ति उच्च शिखर तक नहीं पहुंच सकता । कारण यही कि नारीजाति



स्नेह और सौजन्य की देवी है, वह नर-पशु को मनुष्य बनाती है, वाणी से जीवन को अमृतमय बनाती है, उसके नेत्र में आनन्द का दर्शन होता है। वह संतप्त हृदय के लिए शीतल छाया है, उसके हास्य में निराशा मिटाने की अपूर्व शक्ति है। एकांकी-नाटक जन्मदाता, कवि व समालोचक डा० रामकुमार वर्मा ने इसकी शक्ति अजय बताते हुए कहा है कि “यदि नारी-माँ वर्तमान के साथ भविष्य को भी अपने हाथ में ले ले तो वह अपनी शक्ति से बिजली की तड़प को भी लज्जित कर सकती है।”

जिस प्रकार गोताखोर समुद्र की अतल गहराई में उतर कर विभिन्न प्रकार से अन्वेषण करता है, वैसे ही हम भी यदि शुद्ध अन्तःकरण से गहराई में प्रविष्ट कर विचार करें तो ज्ञात होता है कि मात्र इन्सान की ही नहीं बल्कि समाज और सृष्टि का दारोमदार माँ पर ही है।

बस, इन्हीं शब्दों को ध्यान में रखकर अपरिमित कष्ट सहन करती हुई माँ बच्चे का पालन करती है। फूल से कोमल हृदय और वज्र सा अडिग संकल्प लेकर अग्रसर होती है। माँ-चित्रकर्मि के हाथ में तूलिका होती है, उससे वह चाहे जैसी शकल बना सकती है। उदात्त स्पष्ट वाणी भी अर्पित करती है तथा सच्चे अर्थों में मानव बनाकर देवत्व की ओर अग्रसर करवाती है। बादलों के पानी की तरह माँ द्वारा दिया गया वात्सल्य सर्वत्र पहुंचता है। चाहे वह अनुज हो या अग्रज। वर्षा ऊँची-नीची, गन्दी-अच्छी सब जगह पर बरसती है, इसी प्रकार माँ प्रदत्त प्रेम ऊँच-नीच, क्षत्रिय-वैश्य-ब्राह्मण-शूद्र सभी ग्रहण करते हैं।

मानव जीवन को सही दिशा एवं नई दृष्टि प्रदान करने वाली मात्र यह ‘माँ’ ही है। छतरी जिस तरह धूप-वर्षा से बचाती है उसी प्रकार माँ के सद्बिचार, सद्बिवेक जीवन की धूप तथा वर्षा से हमारी रक्षा करते हैं।

“माली बिना बाग आ बगड़ी जाय” माली के न होने से बगीचा

बिगड़ जाता है। बात सत्य भी है। हम जानते हैं कि अच्छे बगीचे में उनका माली दिन-रात परिश्रम करता है। नए-नए पौधे लगाता है। घास-फूस, कूड़े-कचरे को साफ करता है। साथ ही साथ अपरिहार्यतानुसार पौधों की कांट-छांट भी कैंची के द्वारा करता है। इतना श्रम करने पर ही वाटिका फलती-फूलती है। लोगों में आकर्षण एवं मनोरंजन का केन्द्र बनती है अतः माँ और माली दोनो एक ही तराजू के दो पलड़े हैं।

यही कारण है जितने भी और जिस युग में धर्म-गुरु, उपदेशक, सन्त, महात्मा, सुधारक इत्यादि हुए, सब इसी की ही देन है। इसकी ही कुक्षि से पायथागोरस प्लेटो, साक्रेटीस, सुकरात जैसे दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता ने जन्म पाया था। इसी की अग्रभ्य कृपा से सीस्टम टेरिट्युलियन, क्लीमेंस, फ्रांसीसियों, आँसीसी, गेसेडी, जोहनहावर्ड स्वेडन बोग, जोहन वेस्ली, मिल्टन, न्यूटन, फ्रेंकलीन, पेलो, न्युमन, विलियम ब्रुथ और ब्रेम फूल जैसे सुज्ञ महान पुरुष हुए और इसके ही सम्यक् संस्कारों के फलस्वरूप महावीर, बुद्ध, जरथुस्त, डेनियल और ईसा मसीह जैसे विश्वोद्धारक महापुरुष बनें।

सुलोचना, कौशल्या, राजुल, सीता, मंदोदरी, अंजना, सत्यभामा चंदनबाला, अनंतमती, मीरां, लक्ष्मीबाई, सरोजनी नायडू, महादेवी वर्मा, इन्दिरा गाँधी, एलिजाबेथ, मेडम क्यूरी, मदर टेरेसा आदि विश्व प्रसिद्ध नारियाँ भी इसी माँ की अनुपम देन हैं।

उपर्युक्त का जीवन चरित्र जानना हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है पर.....स्थानाभाव। “जीवन चरित्र ही केवल सच्चा इतिहास है। (कारलाइल) वास्तव में प्राचीन महापुरुषों के जीवन से अपरिचित रहना जीवन भर निरन्तर बाल्यावस्था में ही रहना है।

यूनानी दार्शनिक व जीवनी लेखक प्ल्यूटार्क के शब्दों में—

“To be ignorant of the lives of the most celebrated men

of a antiquity is to continue in a state of child hood all our days."

मनुष्य को महान बनाने के लिए उसे जीवन में आगे बढ़ने में सहायता देने में माँ एक रूप में प्लेटिनम् धातु सी कठोर है पर वही दूसरे रूप में मालती के फूल की तरह सुकुमार है। यही वह है, जिसके अन्दर मानव ने सर्वप्रथम अंकुरित होकर इस रंगीली अटपटी-चटपटी दुनियाँ की पहली सुनहली रश्मि की झलक नयनों से देखी।

मेरी आपसे कुछ कहने की इच्छा है। मैं कहूँ उससे पूर्व ही..... मैं तो क्या एक भिखारी भी मानो भीख माँग कर, याचना कर उदर-पोषण करके आपको अति सुन्दर शिक्षा देता है।

भिक्षुक का नाम लेते ही अवगतव्य घटित घटना मस्तिष्क में मंडलिक वायु की भांति घूम रही है। एक समय भू मण्डल को स्पर्श करते हुए अन्य संतों के संग तीर्थों का पर्यटन करने के लिए हम चल रहे थे। मार्ग में जर्जर शरीर वाला प्रौढ़ भिखारी बैठा था, उसी के समीप एक मानव-समूह दिखाई दिया। वहाँ वृक्ष की घनीभूत छाया थी ही। अकस्मात् मानव-समूह में से एक स्त्री की आवाज सुनाई दी। आवाज से ज्ञात हुआ कि यह स्वर एक वृद्धा का ही हो सकता है। शायद ये सभी इसी के सपूत हैं। हम सभी उनके निकट पहुंच गए।

बेटा ! बहुत थक गई हूँ, जरा पैर दाबना तो—माँ बोली। 'अरी माँ ! तुम देख रही हो कि जितना तुम चली, उतना ही हम भी। जितनी थकावट तुम्हें महसूस हो रही है, उतनी ही मुझे—एक बेटा बोला।

पुत्र का प्रत्युत्तर सुनते ही मेरे मन में अनेक प्रश्न उठ रहे थे...। आश्चर्य भी हो रहा था—क्या माँ ने पुत्र के इसी प्रकार के उत्तर के लिए अपने समूचे जीवन का कष्ट-भूमि पर बलिदान किया था ? आखिर ऐसा क्यों ?



समीपासीन याचक को यह सहन न हुआ, बोला, हे भैया ! मैंने पूर्व जन्म में अपनी माँ की सेवा नहीं की थी, विनय नहीं किया था, इसलिए मेरी ऐसी अधम याचक सी दशा हुई। मुझे कोई भी पूछने वाला नहीं, मेरी सेवा करने वाला कोई भी माई का लाल नहीं। शरीर में रक्त संचार होते रहने से वह स्वस्थ रहता है, उसी प्रकार से इसी शरीर से माँ की सेवा होती रहे तो यह सार्थक है। मैंने सुन रखा है

कि अहिंसावतार राष्ट्रपिता महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गाँधी का कथन है कि “सेवा उसकी करो जिसे सेवा की जरूरत है। जिसे आवश्यकता नहीं, को उसकी सेवा करना ढोंग है, दम्भ है।” इस अम्मा



अभी तुम्हारी सेवा की आवश्यकता है। सेवा करने की योग्यता रखना दण्ड नहीं, ईश्वर का आशीर्वाद है। प्रेम करने की योग्यता सब में है, किन्तु सेवा करने की शक्ति किसी किसी को ही मिलती है। महा-कवि तुलसीदास ने कहा है कि “सेवा धरम कठिन जग जाना” जैसे कुदाल से खोदकर मनुष्य पाताल के जल को पाता है, वैसे ही माँ का आशीर्वाद सेवा से ही प्राप्त होता है।

मैं तो यह सोचता था कि माँ के बिना कोई मनुष्य कैसे जी सकता है ? नाम अमृत का लेकर घूँट जहर का क्या पी सकता है ? नहीं, कभी नहीं। पर मुझे समझ है कि कभी कपूत-दानव भी मानव की तुलना कर सकता है !

हमारे शरीर का वही अंग सार्थक है, जिसने माँ की सेवा की हो। मस्तक वही है, जो उभयकाल में माँ के चरणों में नमन करता है। हृदय भी वही है, जिससे माँ प्रसन्न हुई। तात्पर्य सर्वांग उसी में समर्पित रहना चाहिए। माँ की सेवा भक्ति करो, नहीं तो आपकी

भी मुझ जैसी याचक दशा हो जायेगी। “भूठे टुकड़ों की आशा लेकर जो घर घर में भटकते फिरते हैं।”

मैं अधुना मनुष्य रूप में हूँ। अतीत में कहाँ था और अनागत में कहाँ रहूँगा, इसकी किसे सूचना है, कौन कह सकता है? पर रहूँगा नितान्त निश्चित……उसका कारण यही है कि आत्मा अजर, अमर अविनाशी और अविभाज्य है।

असीम कल्पनाओं से जुड़ने वाले, पृथ्वी और गगन की दूरी के सृदश लम्बी-लम्बी योजनाएँ निर्मित करने वाले, जीवन-यात्रा में ऊँची-ऊँची उड़ान भरने वाले, अपने आपको अनन्त शक्ति का धनी स्वीकार करने वाले मनुष्य को मृत्यु एक क्षण में कैसे विध्वंस कर देती है। और……और न जाने कब वह पल जीवन में आ जाए। अतः स्वकर्तव्य का पालन करो, माँ की सेवा-भक्ति करो।, भिखारी बोला।

मेरा मन वर्तमान, भूत, भविष्य के चिन्तन की गहराई में डूबता उतरता रहा। देखो एक दुःखी व्यक्ति को—निर्धन याचक को—गरीब के सुहृदब को। माँ के लिए प्राप्त साधन को त्याग करने की लालसा कितनी तीव्र है, उसके लिए तप करने की, बलिदान एवं आत्म न्योछावर करने की अभिलाषा कितनी उत्कट है।

धन्य है रे भिखारी ! तू है तो याचक, पर तेरे मानस में माँ के लिए स्थान इतना निर्मल-पवित्र। कौन कहता है कि तू फकीर है? संभव है बाह्य रूप से जेब का फकीर हो परन्तु दिल से तो पक्का अमीर है। तेरा माँ के प्रति प्रेम-भाव पूर्ण समर्पित है। जिन्हें श्रद्धा सुमन से सम्बोधित करे, यही वास्तविक सम्पत्ति है।

“प्रेम-भाव सा कोई शुभ धन नहीं है।  
प्रेम-भाव सा कोई कंचन नहीं है ॥  
चाहे खोजले कोई कितना कहीं भी।  
प्रेम-भाव सा दूजा मधुवन नहीं है ॥  
नहीं वैर भावों से मन शान्त होता,  
मगर प्रेम सा जग में चन्दन नहीं है ॥

चाहे प्रार्थना कोई कितना भी करले,  
मगर प्रेम-सा पावन वन्दन नहीं है ॥  
जीवन विफल है जग में उसी का,  
जिसे प्रेम का कोई चिन्तन नहीं है ॥  
बिना प्रेम-दीप मन-मन्दिर अंधेरा,  
बिना प्रेम-जीवन, जीवन नहीं है ॥

माँ से प्रेम भरा आशीष तो प्रत्येक को प्राप्त करना चाहिए । जैसे सूर्य को पाकर कमल खिल उठता है, परन्तु हिम कणों के बिना शोभा नहीं पाता । अरविन्द के प्रस्फुटित होने पर ओस-बिन्दु उसकी शोभा में अभिवृद्धि कर चार चाँद लगाते हैं, वैसे ही माँ का पुत्र रूपी कमल पर आशीष रूपी हिम-कण बरस जाये तो वह अद्भुत शोभा प्राप्त करता है और ऊर्ध्वीकरण मुफ्त में । जालिम व्यक्तियों को कमी नहीं । जालिमों को मैंने आज तक कभी फलते-फूलते नहीं देखा बल्कि उनका दम बुरी तरह से निकलते देखा है । कारण यही कि उनमें आदर्श नहीं है और.....और जब आदर्श नहीं है तो इतने बड़े पाँच छः फुट के आकार से क्या होगा ? लम्बी-चौड़ी शरीराकृति से कुछ भी नहीं होगा । मानव-आकृति प्राप्त करना भी सतत् प्रवाह-मान जीवन की एक विशिष्ट उपलब्धि है, किन्तु यदि आकृति के साथ प्रकृति का अभाव है तो उसकी उतनी कीमत नहीं जितनी प्रकृति समन्वित आकृति की है । यदि हमारे में आकृति के साथ प्रकृति का आगमन हो गया तो समझो आकृति धन्य-धन्य हो गई ।



सद्धर्मप्रचारिणी साध्वी मणिप्रभा श्री ने सबल स्वर में उद्घोष किया है—“मानवाकृति की दुर्लभता का गान क्यों ? वह इसलिए कि इस आकृति को छोड़कर अन्य कोई आकृति श्रेष्ठ नहीं जिसके लिए

हम प्रभु से प्रार्थना करें कि आगे हमें भी यह आकृति मिले । सर्वोपरि आकृति यही है ।”

‘नहि मानुषात्’ श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्, या ‘बड़े भाग मानुष तन पावा’ आदि ऋषिमुनियों ने कहा “क्योंकि यह सर्व-ज्येष्ठ है पर” ज्येष्ठता के साथ श्रेष्ठता का समन्वय नहीं तो हमारी ज्येष्ठता का कोई महत्व नहीं । आजकल तो आकृति में प्रकृति आएँ—यह बात तो योजुनों दूर है । उल्टे विकृति ही विकृति आ रही है । अधिक क्या कहूँ ।

आप तो आप हैं ।

माँ के नाम पे,

करते बड़े पाप हैं ।

विशेष क्या कहें

बगल में छूरे

मुख में भगवान है ।

तंग आ गया मैं

कारण यही है

आप तो आप हैं ।

आप रामायण की किस पंक्ति के शब्द हैं ! ये तो राम जाने । पर शायद रावण की पंक्तियों में से आप कोई शब्द हो, अथवा राम वाली पंक्तियों में से ।

माँ ! माँ तो होती है साथ में सास भी । वैसे फिर सास तो सास होती है । जब सास होगी तभी पुत्रवती बहू होती है । उसका पुत्रवती होना ही पुत्र का सौभाग्यलक्षण है और पुत्र का होना ही अन्ततः सास-माँ का होना है ।

समाज शास्त्र के जन्मदाता व सोशयालोजी के पितमह आगस्त काम्पे का कथन है कि सास-बहू की एक अनिवार्य आवश्यकता है । सास रहित बहू और माँ हीन पुत्र, अधिक दिन स्वयं का अस्तित्व न तो यह कायम रख सकती है और न ही वह ।

आधुनिक अर्थशास्त्र जनक एडमस्मिथ ने बेटे और दहेज का परिणाम बहू को स्वीकृत किया है। मेरे लिए यह कथन करना शोक-युक्त तथा दुष्कर है कि जगत् में सास का आगमन सर्वप्रथम हुआ या बहू का, बाप पहले आया या बेटा, पत्नी पहले आयी या पति आया शायद आप जानते ही होंगे.....।

विश्व की सभी सिद्धधारिणी वधुओं का कथन है कि सास आखिर सास होती है और उन वधुओं के वरों का भी यही उपर्युक्त कथन है कि माँ भी आखिर माँ ही होती है। चाहे वह पत्थर-मिट्टी से निर्मित हों या हाड़-मांस से.....वधू और वर के मस्तिष्क मतानुसार सास-माँ पूर्णरूपेण नहीं तो लगभग गलत व खराब होती हैं और सास के शब्दानुसार उसके लाड़ले की किस्मत फूट गई, जो ऐसी वधू मिली।

एक व्यक्ति की अविस्मरणीय आश्चर्यकारी और रोचक बात प्रदर्शित करूँ। औसतन भारतीय परिवारों की भाँति ही मेरे गृह में भी सास व बहू विद्यमान है। मेरी मान्यता है कि इन द्वय महामूर्तियों की उपस्थिति मेरे श्रेष्ठ सौभाग्य की परम रेखा है। और जब से ये दोनों घर में हैं। मैंने तो छवि-घर जाकर चलचित्र देखना बन्द कर दिया है और दूरदर्शन-पट इसलिए विक्रय किया, क्योंकि ये दोनों स्व संगठन कर हमेशा ऐसी सुन्दर नाटकीय स्थितियाँ घर पर ही उपस्थित कर देती हैं। न मालूम कौन सी दैविक शक्ति इन माननीयों को उपलब्ध है कि घर पर ही “सौ दिन सास के और तीन सौ पैंसठ दिन बहू के” द्रष्टव्य हो ही जाते हैं। पत्नी की सास मेरी माँ है और मेरी माँ की बहू मेरी पत्नी है। जब इन राजमाता और राजरानी दोनों का हस्त-युद्ध और वाक् युद्ध का शुभारम्भ होता है, उस समय भारत सदृश ही मेरी स्थिति तटस्थ होती है।

राष्ट्र की जानी पहचानी सास बहू का श्रीमती गांधी के परिवार में जिस दिन से आत्मिक शीतयुद्ध प्रारम्भ हुआ है, उसी दिन से पंचम्



रस वीर रस का स्थायी भाव उत्साह जोरशोर से तैयारी के साथ सास व बहू में उद्दीप्त हो गया है और मैं रहा राजीव गांधी; संजय ने जैसे नशाबंदी के लिए भारतीय जनता को घसीटा वैसे ही मुझे भी राजीव गांधी की तरह बीच में घसीटा जा रहा है, जब कि मैं घसीटाराम नहीं हूँ और मैं तो पूर्व से ही इतना अधिक घसीटा जा चुका हूँ कि अब और सहन करना मेरी सम्पूर्ण कायिक क्षमताओं की सीमा के बाहर की बात है। राष्ट्र की सुप्रसिद्ध सास इन्दिरा जी ने जिस समय से मेनका बहू को एक सफदरजंग से विदाई अर्पित की हैं। उसी समय से मेरे माँ के मानस में भी यही इच्छा है कि यह भी अब शीघ्र ही किसी अन्य स्थान का अन्वेषण कर ले। नित्य के नूतन हल्दीघाटी युद्धों से मेरी माँ नख-शिख तक तंग आ चुकी है।

पत्नी देवी का “उत्तराध्ययन” कुछ विभिन्न कोटि का तथा विशिष्टता को ग्रहण किए चरम शिखर पर है। न मालूम कब से वह मेरे मायके को त्याग करने के लिए उत्सुक, बैचेन और तिलमिला रही है। पर मैं ही सास-बहू के मध्य “ब्रिज कारपोरेशन” रोल अदा करके तन-मन-वचन द्वारा दोनों में जान बूझकर भगड़ा करवा कर रोचक तमाशा देखने का शब्दातीत आनन्द ग्रहण कर रहा हूँ। क्योंकि—

सासू जी ने मारी बिनणी, जबरों नाच नचावें रे।

यो कलियुग साफ सुणावे रे।

बीकाणेरी हवा लागने सुपारी आ चमके रे।

सासू जी तो एक सुणावे, बहू जी पांच सुणावे रे।

बोल्या बहू जी सुणो सास जी, ये म्हाने नहीं सुहावे रे।

भोली भोली सासू पर बहू जबरो जोर जमावे रे।

यो कलियुग साफ सुणावे रे।

घणा करोला बड़बड़ाट तो, भट होस्याँ म्हें न्यारा रे।

टिगट कटास्यां, इण घर सूँ म्हें थे बैठा तारा गिणज्यो रे।

चुप रेंवों थे सासू जी, नहीं तो मजा चखाऊँ रे।

सूधी साधी सासू जी ने, बहू आंख्या लाल बतावें रे।

यो कलियुग साफ सुणावे रे।

लुखो सूखी रोट्यो खाकर, सासू दिन गिण काटे रे ।  
मगर बिनणी बड़ी चटोकड़, ताजा माल उड़ावे रे ।  
होटल में धक्का खाया बिन, एक दिवस नहीं जावे रे ।  
सासू जी तो करे रशोई, बहू सिनेमा जावे रे ।

यो कलियुग साफ सुणावे रे ।

चीन और जापान की साड़ीयां बहू ने नित नई चइजे रे ।  
सासू जी तो बणिया बिनणी, बहू सासू बण बैठी रे ।  
सिगले घर पर हुकम चलावे, या बहू निराली आई रे ।  
कान खोल सुण सासू बहू का सच्चा हाल बताया रे ।

यो कलियुग साफ सुणावे रे ।

मेरी पत्नी का कार्यक्रम सास की अपेक्षा सहस्र गुना उत्तम ही होता है । उसका कार्य दिनभर समझ-समझ कर ऐसी विकट सुन्दर परिस्थितियों का निर्माण करना है जिनमें भारत और पाकिस्तान के युद्ध की घोषणा की संभावनाओं की भूमिका तैयार हो जाए ।

सास के साथ आवश्यक सामग्री क्रय करने बहू चली गई और मन में कुछेक विचारों का आगमन हो गया तो वहीं बैंड बाजों का उद्घाटन कर देगी । घर में रसोई बनाई तो किसी दिन रोटी कच्ची या जली हुई । सब्जी में किसी दिन ज्यादा नमक तो किसी दिन साग में नमक लापता । फिर मैं गुमशुदा नमक को साग संसार में खोजने लगता हूं । यदि नमक बराबर डालने की कृपा कर दी तो किसी दिन मिर्च ही मिर्च और किसी दिन धनिया ही धनिया । अब मेरी पत्नी की सास कब तक विनोबा भावे जी की तरह मौन अंगीकार करे । बस उनके मात्र बोलने की देर है कि मेरी पत्नी कुरुक्षेत्र में कूदने के लिए तैयार ।

‘तुम्हें सब्जी बनाना नहीं आता’—माँ ने अगर कह भी दिया ऐसा तो पत्नी जी आँखें तरेर कर, गुराँटे करती हुई कहेगी—‘मुझ से तो ऐसी ही बनेगी यदि आपको पसन्द नहीं है तो स्वयं ही बैठ कर बना

लिया करो या अपने अमोल-रत्न को कह दो कि वह दूसरी ले आए । कौरव-पांडव मध्य ऐसे संवादों की शुरुआत होते ही भारी महायुद्ध जारी । समीपवर्ती पड़ोसी महिलाएँ यदि बचाव कार्य का त्याग कर दें तो मुझे सास-बहू दोनों को “अमरजेन्सी सर्जिकल वार्ड” में भरती करना पड़े । और मुझे एक माह तक उपवास ही करना पड़ेगा, कारण स्पष्ट है कि महीने का वेतन तो सहजता से अस्पताल में समाप्त हो जायेगा ।

वर्तमान समय में तो दो बार विचित्र प्रकार का दृश्य दृष्टि में आया है कि सास-बहू में कई दिनों से संवाद की तिथियां समाप्त हो जाती हैं । ऐसे शुभ दिनों में मेरे प्रयत्न उनमें से किसी एक को उकसाने के होते हैं और परिणाम स्वरूप घर पुनः रणक्षेत्र में परिणत हो जाता है । मैं इन दोनों में विलय होता देखना चाहता हूँ । इसी प्रतीक्षा में बैठा-बैठा क्रांतिकारी कार्य कर रहा हूँ ।

मेरा विश्वास महाकवि प्रसाद के महाकाव्य कामायनी के जल-प्लावन में है कि किसी दिन सास-बहू में सिर फुटौवल होगी और रक्त क्रांति के द्वारा समाजवादी शांति का उदय सूर्य की भांति होगा । मैं उस दिन की प्रतीक्षा में अकबर अहमद की तरह हूँ । वह शुभ दिन जाने कब आएगा ? ..... एक व्यक्ति मेरे पास आया । उपर्युक्त बात उसने बड़े ही हाव-भाव के साथ कही ।

वाह ! वाह ! मैंने अंगूर मीठे सोचे थे लेकिन ये अंगूर तो खट्टे हैं । मैंने उसे समझाते हुए कहा, भैया ! आज देश को दुश्मनों से नहीं बल्कि गद्दारों से अधिक खतरा है । खजाना है, लेकिन उसे चोरों से नहीं पर पहरेदारों से ही खतरा है । माँ की सुरक्षा के लिए सावधानी की जरूरत है, उन्हें दूसरों से नहीं किन्तु बेटे-बहू से ही खतरा है ।

यद्यपि उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द ने तो कहा है कि “माँ के बलिदानों का प्रतिशोध कोई बेटा नहीं कर सकता, चाहे वह भूमंडल का स्वामी ही क्यों न हो ।” पर यहां पर तो कुछ और ही दृश्य नजर आ रहा

है। भैया ! भारतीय मुनि विद्यानंद जी ने कहा कि माता की सेवा करना पुत्र का प्रथम कर्त्तव्य है।, हेमचन्द्राचार्य, हरिभद्र सूरि, श्रीमद्जिनदत्त सूरि, देवचन्द्र जी आदि सभी ने भी यही बात कही है। फिर मैंने उसको शिक्षा देते हुए एक गीत गुन गुनाया—

“दूसरा सभी कुछ भूल जाना, लेकिन माँ को भूलना नहीं।

अगणित है उपकार उसके, यह बात कभी विसरना नहीं ॥

असह्य वेदना सहन की उसने, तब तुम्हारा मुँह देखा सही।

उस पवित्र आत्मा के हृदय पर, पत्थर बन चोट पहुँचाना नहीं ॥

अपने मुँह का कौर खिलाकर तुमको इतना बड़ा किया।

उस अमृत पिलाने वाली पर जहर कभी उछालना नहीं।

बहुत लाड़ प्यार करके तुम्हारी सभी कामना पूरी की।

मनोकामना पूर्ण करने वाली का उपकार कभी भूलना नहीं ॥

लाखों कमा लो हो भले तुम मगर माँ को शान्ति नहीं।

वह लाख नहीं पर खाक है, इस बात को कभी भूलना नहीं ॥

यदि संतान से सेवा चाहते हो तो संतान हो तुम सेवा करो।

जो जैसा करता है वैसा भरता है इसबात को कभी भूलना नहीं ॥

गीले में स्वयं सोकर उसने सूखे में सुलाया तुम्हें।

उसकी अमीमय आँखों को भूलकर कभी गीली करना नहीं ॥

फूल बिछाये हैं जिसने तुम्हारी सदैव राह पर।

उस राहबर की राह पर काँटे कभी बिछाना नहीं ॥

द्रव्य खरचने पर सब कुछ मिले किन्तु माँ तो मिलती नहीं।

उसके पुनीत चरणों की सेवा जीवन में कभी भूलना नहीं ॥”

स्मरण रहे माँ खराब नहीं हैं। खराब हैं तो आप और आपकी पत्नी की भावनाएं इसी से माँ और आपके बीच का सम्बन्ध विषमिश्रित क्षीर का कटोरा बना हुआ है। कविवर जयशंकर प्रसाद ने कहा है कि “कुलवधू होने में जो महत्व है, वह है सेवा का न कि विलास का।” मा. स. गोवलकर की ‘विचार नवनीत’ पुस्तक में लिखित वाक्य आज

भीमुके कंठस्थ हैं कि “माँ की सेवा ईश्वर की ही सेवा है”। आपके नेत्रों के सामने खड़े वृक्ष पर आपने कभी चिन्तन किया ! जो सहस्रों लक्षों वर्षों की शीर्षासन सजा को पाया हुआ माँ पर किये गये दुष्कर्मापराधी जीव ही तो है न ? स्वरूप से दिग्म्बर तप्त ताप के मध्य में । मस्तक नीचे, पैर ऊपर । गगन को पैर मारने की आकांक्षा लिए हुए मूल (माथा) से जल पीता है, भूमि को चीर कर जो भूमि का रक्त है । वह भी चूस-चूस कर । पापी महापापी……माँ का कर्मापराधी…… ध्यान रहे यह शीर्षासन नहीं । माँ को नमन न करने पर कर्मराज का क्रूर महादंड ! दुष्परिणाम आपने भी उसके प्रति लघुता की भावना नहीं रखी । जो कभी नमा नहीं उसे कर्म क्या यह सजा नहीं देगा । “जहाँ नम्रता से काम निकल जाए, वहाँ उग्रता नहीं दिखानी चाहिए” (प्रेमचन्द) कहावत भी है अभिमान की अपेक्षा नम्रता अधिक लाभकारी है । बड़ों के प्रति नम्रता कर्तव्य है, समकक्ष के प्रति विनय सूचक है, छोटों के प्रति कुलीनता की द्योतक एवं सबके प्रति सुरक्षा है । आपने सर टी० मूर का नाम तो सुना है । उन्होंने भी कहा था—To be humble to superious is duty, to equals courtesy, to inferiors nobleness, and to all safety.

संत कबीर ने कहा भी है—

“सबते लघुताई भली, लघुता ते सब होय ।  
जस द्वितीया को चन्द्रमा, शीश नवै सब कोय ॥”

“नमो इति उग्रम्” नमस्कार यह उग्र प्रकार की माँ से आशीर्वाद प्राप्त करने की साधना है । अयोग्य को मस्तक नमाना पाप है तो योग्य को मस्तक न नमाना महापाप है । माँ को मात्र अपना पुत्र ही प्यारा होता है । पिता से माँ यही विनती करती है “प्रियतम ! बतला दो ! मेरा लाल कहाँ है, अनगिनत अनचाहे रत्न लेकर क्या करूँगी, मम परम अनूठा लाल ही नाथ ला दो ।”

संत विनोवा भावे का उद्घोष है कि “माँ की सेवा हेतु धन की आवश्यकता नहीं होती, यदि आवश्यकता है तो सिर्फ स्वयं संकुचित

विचार त्यागने की।” सेवा में जितनी निरहंकार भावना रहेगी उतनी सेवाकी कीमत बढ़ेगी। त्याग और सेवा ही भारतीय आदर्श है। स्वामी विवेकानन्द के इसी भाव को पुनः जमा देना चाहिए। बाकी आप ही आप हीन हो जायेगा। मेरे द्वारा कथित एक-एक शब्द एक-एक बूँद के सदृश था। बूँद बूँद मिलकर ही सिन्धु का निर्माण होता है। मोती-मोती मिलकर माला तथा शब्द-शब्द मिलकर काव्य का निर्माण होता है। कहा तो संक्षेप में परन्तु सम्मुख बैठे व्यक्ति ने व्यंजना द्वारा ऐसा भावार्थ लगाया कि पारस के स्पर्श से लोहा भी सोना बन गया। उसका जीवन परिवर्तित हो गया।

“उपकार तो फूल है, कांटा नहीं। वह तो प्यार है चांटा नहीं।” उपकार की दृष्टि से माँ के पश्चात् पिता एवं उसके बाद गुरु उपाध्याय का क्रम आता है। आपको शायद ऐसा लग रहा हो कि मैं भ्रूँ कह रहा हूँ। ना रे! ना!! धार्मिक ग्रन्थों के पृष्ठों को पलटिये। गलत धारणाएँ समाप्त हो जायेंगी। पूरी की पूरी रफू चक्कर जैसे सिपाही को देखकर चोर—

उपाध्यायानां दशाचार्यं आचार्याणाम् शतं पिता ।

सहस्रं तु पितृन् माता, गौरवेणातिरिच्यते ॥

(मनुस्मृति ६।१४५)

गौरव की दृष्टि से दस उपाध्यायों के समकक्ष एक आचार्य है, सौ आचार्यों के बराबर एक पिता, और एक हजार पिताओं के बराबर कितने। हजार! पूरे के पूरे एक हजार हां! और इन एक हजार पिताओं के बराबर एक माँ होती है।

मुसलमानों के धार्मिक ग्रन्थ ‘कुरान शरीफ’ में “हदीस शरीफ” ने कहा—“हुजूर ने फरमाया है कि बाप की पेशानी चूमना और माँ के कदम चूमने से सआदत हासिल होती है।” पिता के मस्तक का चुम्बन लेना और माँ के चरण कमल का चुम्बन लेने से इहलोक व परलोक दोनों में उसे भलाई मिलती है। बेंजमिन वेस्ट ने पुकार-

पुकार कहा कि “मेरी माँ के चुम्बन ने ही मुझे चित्रकार बना दिया है।” (A kiss from my mother made me a Painter) अतः स्पष्ट है कि माँ का दर्जा पिता से अत्यधिक ऊँचा होता है। यही कारण है कि माँ बाप, जननी-जनक, मम्मी-डैडी मदर-फादर इत्यादि शब्द युगल में भी माँ को पहले बोला जाता है।

अर्थ-साधन चलता रहे। माँ तो व्यर्थ है? ऐसा मत समझ लेना। आप पिता को याद करने लग गये कि पिता के लिए सफेद पर काला नहीं किया। पिता! जब-जब आप जैसे पुत्र ज्यादा चपड़ चूँ करें अधोलिखित महाभारत के शान्ति पर्व में (२६६/२१) श्लोक की तस्ती पर लिखकर आपके समक्ष रख दें।

“पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।

पितारि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्त सर्वं देवताः॥”

दूसरी पंक्ति का भावार्थ यह है कि “पिता प्रसन्न होने से सर्व देवता संतुष्ट होते हैं। पिता देवों से आद्य है।” यानी अब हनुमान जैसे देवता को छोड़ दे जिसके पिता ही पवन है। वरन् प्रत्येक सुर-सुरेन्द्र के माँ-बाप तो होते ही हैं। “को माता को पिता हमारे?”



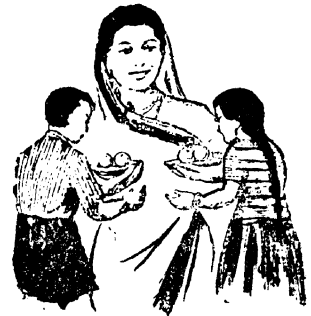
आप पूछेंगे—पाप का बाप तो लोभ पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश के बाप का नाम क्या था? जो सबका बाप हो उसका बाप और कौन होगा? ऐसे प्रश्न क्यों पूछते हो? यह तो चर्चा का विषय है और चर्चा का सार मर्चा है। एक अंग्रेजी अल्प जानने वाले ने क्रोध में पूछा “वाट गोत्र आफ युअर फादर? एक विद्वान ने हमें बताया कि स्कन्द पुराण में शिव का गोत्र ‘नाद’ बताया गया है परन्तु अब हम पितृ चिकित्सा नहीं करेंगे। अपने लक्ष्य की ओर चलते हैं। लक्ष्य नहीं तो कुछ नहीं। समाज की उन्नति हेतु सद्गुणों की होड़ और लक्ष्य के अनुकूल दौड़ अच्छी होती है।

अपना लक्ष्य है माँ! दौड़ है माँ! हम उसके दासानुदास हैं

और वह है स्वामिनी ! क्यों ? किस कारण ? इस बारे में नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा और वह भी ध्रुव सत्य । “एक अच्छी माँ सौ शिक्षकों की आवश्यकता को पूरा करती है ।” संतानों के चरित्र को घड़ने वाली और उसके द्वारा समाज और राष्ट्र को बनाने वाली माँ ही है । सर्व विवाहित और माता-पिता बने पाठकों का अनुभव भी साधारणीकरण के न्याय से यहीं विवाद का विषय होगा कि बच्चे में अच्छे और बुरे गुण माँ के होते हैं अथवा पिता के नारी वर्ग का कहना है कि जो सर्व निम्न गुण बेटे-बेटी में हैं वे पिता के ही हैं । “माता कुमाता न भवति” । पुरुष की मान्यता है कि सभी बच्चे माँ के लाड़ के कारण बिगड़ते हैं ।

स्वीडन में १९७४ में एक कानून पास हुआ, जिसे अब लागू किया गया है । ‘स्त्री-पुरुष के समानता के अधिकारों में अब जिम्मेदारी केवल माँ की नहीं होगी, पिता को भी यह दायित्व समान रूप से निभाना पड़ेगा’ । (स्टेट्स मैन, १८ फरवरी १९८१)

लो बच्चू ! पकड़े गये न अब ? आप भी कम नहीं । लातों के देव बातों से मानने वाले नहीं । तभी तो माँ की महिमा सभी गाते हैं । यदि आप सपूतों का जन्म नहीं होता तो माँ को अपार कष्ट होता । यही सोचकर कि मेरे समीप प्रेम-अमृत है, लेकिन मैं किसी को पिला न सकी । यद्यपि वर्तमान युग के कुछ पिता तो सोचते हैं “कन्या-पितृत्वं खलु नाम कष्टं” कन्या का पिता होना ही कष्टप्रद है । अच्ा हुआ गांधी जी के चार लड़के ही हुए । लड़की नहीं । लेकिन आप यह क्यों नहीं सोचते कि कन्या के बिना पिता कैसे बने ! पहले कन्या का जन्म हुआ तभी तो पिता बने । बड़ा अच्छा हुआ “अंगूर को बेटा न हुआ” । माँ के लिए बेटा-बेटी दोनों समान हैं । दोनों को एक साथ प्रेम करती हैं, भोजन कराती है ।





“जे घर भूलावे पारणुं,  
ते करे जगत पर शासन ।

जिस घर में पालना भूलता है वह विश्व पर राज्य करता है । माँ चाहे आपकी हो या मेरी, वह तो माँ ही है । उसका हृदय विशाल ! परम विशाल । जिसके सामने शायद अम्बर भी छोटा है—अणु मात्र ।

“दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा ।”

(भगवती सूत्र—जैन धर्म ग्रन्थ)

निस्वार्थ दाता और निर्लोभी जीवन जीने वाला पात्र दोनों दुर्लभ हैं । माँ भी तो इसी प्रकार की होती है क्या पिता में यह गुण विद्यमान है ? शायद अज्ञात है.....।

“नर नाम उन महानुभावों का है जो सर्वजन अथवा प्राणिमात्र का नयन नायकत्व करते हैं । जिन्हें अपने बच्चों के लालन-पालन की चिन्ता रहती है, उन्हें पिता कहते हैं । स्त्री-भोगी विषयी विलासी पुरुष-समूह हेतु पति शब्द प्रयुक्त हुआ है । विश्व के मानव प्रायः पिता या पति दो समूहों में हैं और दोनों मनुजाकृति में पशु ही हैं” । (वेदालोक—स्वामी विद्यानंद, ‘विदेह’) पर माँ ! असली दानी होती है । वह दान दासी नहीं, वह दान सहायिका भी नहीं बल्कि दानपतिनि होती है ।

जो सुस्वादु भोजन करे पर दूसरे को अस्वादु दे वह दानदासी है । जो जिस प्रकार खाती है वैसा ही दूसरे को प्रदान करे वह दान सहायिका और दानपतिनि वह होती है जो अपने से अच्छा दूसरे को खिलाये । वास्तव में वही दानवीरा हैं जो स्वयं कष्ट सहकर, रूखा सूखा खाकर दूसरों को सुख देती हैं । अच्छा खिलाती है । माँ वीरों में वीरा दान रा है ।

माँ पुत्र-पुत्री को उत्तम प्रेम दान देती है । पाराशर स्मृति में कथन है—“अभिगम्योत्तम दानमाहूयैव तु मध्यमम्, अधम् याचनानाय दानम्” । “देने वाली माँ है, जो देवत है दिन रैन” । देने वाली

माँ जानती है कि मैंने प्रेमदान दिया है पर लेने वाला नहीं जानता ।  
 अहो दानम् । गुप्तदानम् ! माँ ! तेरा दान !  
 महादानम् ! यह जगत् को असीम स्नेह और  
 सौजन्य का दान देती है । और इसके समक्ष कर्ण,  
 राजा बलि या विक्रम राजा का दान पर्वत के समीप  
 कंकर के दान तुल्य है । “नो संचितव्यम् कदा” कदापि  
 संचित नहीं करती बल्कि देती ही रहती है—स्व  
 जीवन की दिव्यता । यदि नौका में पानी भर आता है तो माँभी क्या  
 करता है ? दोनों हाथों से उलीच-उलीच कर उसे बाहर निकालता  
 है । माँ भी अपने प्रेम-समुद्र में से दोनों हाथों से उलीच-उलीच कर  
 वात्सल्य हम पर बरसाती है । मधुर वाणी और दान ये दोनों माँ के  
 विशेष गुण हैं ।



माता मधुवचाः सुहस्ताः (ऋग्वेद ५।४३।२)

जब माँ नहीं होती तब उसकी अल्पता अवगत होती है । उसकी  
 उपस्थिति में प्राप्य सुख का मूल्य आंका जाता  
 है । भ० महावीर का कथन है कि “दुःख  
 सभी को अप्रिय और सुख प्रिय लगता है । जो  
 अप्रिय है वह त्याज्य और जो प्रिय है वह  
 ग्राहणीय, तो माँ..... अत्याज्य । एक गुजराती  
 कवि ने ठीक ही लिखा है—



गोल बिना मोलो कंसार ।

माँ बिना सूनो संसार ॥

कंसार में जब तक गुड़ नहीं डाला जाये तब तक वह अस्वाद्य  
 रहेगा और उसमें गुड़ का प्रविष्टीकरण होते ही उसका स्वाद परम  
 हो उठता है, जिस प्रकार नवयुवती को पाकर शैतान का मन ।  
 संसार विस्तृत विशाल है पर माँ के बिना कुछ भी नहीं । उसकी

वाणी हमारे हृदय और मस्तिष्क को समान रूप से प्रभावित करती है। माँ की वाणी प्रभु की भाँति चिरकाल तक जन-जीवन को आलोकित करती रहती है।

आप झूठ मान बैठे ! जब भी प्रकट सत्य की स्थिति हो, स्वीकृति से कतराना क्यों ? खैर, कुछ भी मानो। पर माँ अभिनव युग की अधिनायिका है, पद दलितों का क्रान्ति-घोष और अबलों का शक्तिकोष है। मैंने देखी है उसके व्यक्तित्व की महिमा और महता। वह आलोक के सदृश होती है। उसकी महानता सर्वव्यापी होते हुए भी लौकिक-चक्षुओं से दृष्टिगोचर नहीं होती। वह तो प्रकाश और पवन के समान प्रत्येक को अंधकार हीन और प्राणमय बनाती रहती है। उसके प्रेम की एक झलक ही प्रातःकालीन सूर्य की तेजोमय प्रथम किरण की भाँति नवीन सृष्टि और आलोक विकीर्ण कर देती है। सच्ची माँ के व्यक्तित्व में एक विलक्षणता है। संघर्षों से संघर्ष करने की वृत्ति और साथ ही साथ परिस्थितियों से जूझने का अदम्य साहस।

विचार ही विचार का उद्भावक है। माँ के विचार ही पुत्र के विचार को जन्म देते हैं। विचार ही विचार का परिष्कार करता है एवं विचार ही विचार को काटता छांटता है।

उनकी जीवन दृष्टि विमल है और विचार विमलाचार। जन-जीवन को विमल विशदतम् नव संस्कार देती है। लेकिन आप.....

“रघुकुल रीति सदा चली आई।

प्राण जाय पर वचन नहीं जाई॥”

प्रतिक्षण आपके मुखारविन्दु से यह ध्वनि मुखरित हो रही है कि-  
“न त्वमेव माताच न पिता त्वमेव”। हे माँ ! तू ने मेरा क्या किया ? पर हमारा नाम तेज बहादुर हो या तेजी, हमारा हुलिया देखकर हमें बच्चन कौन मानेगा ? अंग्रेज राज कवि डब्लू० वर्ड्सवर्थ ने कहा है

“The child is the father of the man.” इसका अनुवाद एक सिनेमा प्रेमी को करने के लिए दिया तो बोला ‘अमिताभ बच्चन’ है।

आप भी तो उसी बाप के बेटे हैं। “जैसा बाप वैसा बेटा” वाली कहावत सही होती होगी किसी जमाने में……पिता के विषय में क्या कहें—कन्यादाता, अन्नदाता, ज्ञानदाता, अभयदाता, मंत्रदाता, ज्येष्ठ भ्राता आदि ये सब पिता हैं। ऐसा ‘ब्रह्मवैवर्तपुराण’ के श्री कृष्णजन्म खण्ड का साक्ष्य है। चाणक्य ने कहा है कि “उपनयन कराने वाला भी पिता ही है।”

ये पिता लोग अपने को ही सर्वस्व समझते हैं। प्राचीन-काल में माँ के प्रति और उसकी महत्ता का बड़ा ध्यान रखा जाता था। किन्तु मध्य युग में माँ जाति के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया गया। अपने आपकौ विद्वान् एवं नीतिकार मानने वालों ने तो यहां तक कह दिया कि नारी चंचल, कलहप्रिय और चरित्रहीन होती है। इसलिए इसे डंडे के बल पर चलाना चाहिए; स्वतन्त्रता कभी नहीं देनी चाहिए। जैसाकि तुलसीदास ने लिखा है—



“ढोल गंवार शूद्र, पशु नारी,  
ये सब ताड़न के अधिकारी।”

एक अन्य और नमूना देखिये—

“जिमि स्वतंत्र होई, बिगरही नारी।”

इन उक्तियों के माध्यम से तुलसी दास जी ने नारी जाति को प्रकटतः यद्यपि निन्दा सी की है, पर तुलसी जिस प्रकार का समाज और राष्ट्र निर्माण करना चाहते थे, उनकी पूर्ति नारी जाति के उन्नत हुए बिना असम्भव है। तुलसीदास के इस कथन में तड़ धातु का प्रयोग प्रत्येक पदार्थ के लिए भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है, इसीलिए वैदेही जगज्जननी कहलायी है।

“जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत की ज्वालाओं का मूल।  
ईश का वह रहस्य वरदान, कभी मत इसको जाओ भूल ॥”  
(कामायनी)

नारी के प्रति किसी किसी ने तो यहां तक कहा कि—

“स्त्रियो हि मूलं निधनस्य पुंसः, स्त्रियो हि मूलम् व्यसनस्य पुंसः ।  
स्त्रियो हि मूलं नरकस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलम् कलहस्य पुंसः ॥”

स्त्रियाँ पुरुष की मृत्यु का, विपत्ति का कारण हैं। स्त्रियाँ नरक गति का मूल कारण हैं। और वे ही पुरुष के कलह का कारण हैं।

इतना ही नहीं बल्कि यहाँ तक भी कहा गया है कि—

“अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभिता ।

अशौचं निर्दयत्वञ्च, स्त्रीणां दोषा स्वभावजाः ॥”

भूठ, साहस, मूर्खता, लोभ, अपवित्रता और क्रूरता स्त्रियों के स्वभाव एवं जन्मगत दोष हैं।

यह विचारधारा पुरुषों की स्वार्थपरायणता एवं घोर अन्याय की सूचक है। साथ ही मानव-वर्ग हेतु कलंक भी है। पुरुषों को जन्मापित कर उन्हें अपना रक्त पीयूष की भांति पिलाना और अपने समस्त सुखों का बलिदान करके, असंख्य कष्टों को सहन करती हुई अपने पति और पुत्र-पुत्री को सुखी रखने वाली माँ कभी पुरुष के कलह एवं उसकी मृत्यु का कारण नहीं बन सकती है। कदापि नहीं। हमारा समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र पुकार-पुकार कर कहता है कि मनुष्य के कर्म ही उसे स्वर्ग-नरक एवं विभिन्न योनियों की प्राप्ति कराते हैं। यदि हमारी माताएँ ही पुरुष के नरक का मूल कारण है तो सभी पुरुष नरक में ही जाते तो अन्य योनि उन्हें प्राप्त ही नहीं होती।

अरे साहब ! हमारी पितृ संस्कृति के विषय में मत पूछिये। किसी समय में पिता पुत्र को विक्रय कर देता था। अजीगर्त एक क्षुधार्त ब्राह्मण था। उसने अपने पुत्र को शुनः शेष को सौ गौओं के बदले में बेच दिया था। (ऐतरेय ब्राह्मण ७/१२) पिता ऐसी-ऐसी सजा पुत्र को देता था कि ऋग्वेद (१-११६-१६) में एक कथा है कि वृषागिरि ने ऋज्जाश्व को अन्धा कर दिया था। बाद में अश्विनी

कुमारों ने उस बच्चे को दृष्टि दी थी। विकलांग वष में अश्विनी कुमार को पद्मश्री (मरणोपरान्त) देने का सरकार का विचार था पर पता लगा कि अश्विनी कुमार मरते ही नहीं ! मनु महाराज ने अपनी स्मृति (४-२६६, ३००) में लिख रखा है कि पिता जब पुत्र को पीटे तो डोरी या छड़ी से पृष्ठ भाग पर ही मारे, सिर पर नहीं, जो यह नियम नहीं मानेगा उसे चौर्यकर्म की सजा दी जाए। कभी बाप से बेटा सवाया, 'उपजे पूत कमाल हो जाते हैं'। आज कैसा समय आगया है ! नित्य-नए मंजर सामने आने लगे हैं, बेटे बाप की हँसी उड़ाने लगे हैं। अपनी जमानत न बचा पाये तो हमें कायदे कानून समझाने लगे हैं।

पिता जी की तो रामायण ही अलग है। उन्होंने सभी अधिकारों का स्वयं ही उपभोग करना प्रारम्भ कर दिया है और माँ को सर्वाधिकारों से वंचित रखा है। वे इसको कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते कि नर के समान नारी की भी सत्ता है, उसके भी अपने अधिकार है।

कुछेक क्षेत्रों में आज की नारी प्राचीन नारियों के समान नहीं है। जो उसे तुच्छ मानते हैं, उन्हें दृष्टि उठाकर देखने पर ज्ञात होगा कि नारी किसी भी क्षेत्र में पुरुष से कम नहीं है। विद्यालयों में, दफ्तरों में, पुलिस में, व्यापार में, चिकित्सा में और राजनीति में भी स्त्री पुरुष के कन्धे से कन्धा मिला कर चल रही है। अनेक क्षेत्रों में प्रवेश करके इसने अपनी गजब की शक्ति प्रदर्शित की है।

परन्तु हमारे इस शिक्षित समाज में आज भी नारी का बिल्कुल सम्मान नहीं है, जिन्होंने भी नारी की निन्दा की है, वे यह नहीं जानते कि तुलसीदास को इतना ऊँचा बनने की प्रेरणा किसने दी। कालीदास को इतना बड़ा विद्वान् किसने बनाया, नारी ही ने ना।

फिर उनको इतना नीच क्यों समझते हैं।

भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी, लंका की प्रधान-

मंत्री श्रीमती भण्डार नायके, इस्राइल की गोल्डा मेयर, इंग्लैंड की श्रीमती मारग्रेट थ्रोचर इत्यादि ने यह सिद्ध कर दिया है कि नारी पुरुष से कम नहीं अभितु उससे अग्रणी है।

भारत सरकार ने सन् १९७५ में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया था। श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित को अन्तर्राष्ट्रीय संघ की सभा का सभापति चुना गया था। परन्तु उस वर्ष में भी नारी के लिए कोई विशेष कार्य नहीं हुए।

वस्तुतः नारी का दायित्व पुरुष की अपेक्षा अधिक है। वह उदार हृदया है। इसलिए मनुके युग में कहा गया था “यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः”। जिस घर में नारी की पूजा होती है उस घर में देवता निवास करते हैं। वह स्थान स्वर्ग बन जाता है। नारी को घर की लक्ष्मी कहा गया है। वह घर की शोभा है। उसी से घर है। जिस घर में नारी की इज्जत नहीं वह घर अवनति की ओर चला जाता है। “We should wish for others as we wish for our selves.” तभी घर स्वर्ग कहलाने योग्य है। मैं तो माँ को पिता की अपेक्षा अधिक गौरवमयी एवं पूज्य मानता हूँ।

और “एक नहीं दो-दो मात्राएँ,

नर से बढ़ कर नारी ॥” (मैथिलीशरण गुप्त)

स्व द्वारा कथित शब्दों को पिता आज विस्मृत कर बैठा है। जिसके अभाव में पुरुष अपूर्ण है, उसी को आज हेय और उपेक्षणीय बना दिया है। पग-पग पर उसके प्रति अविश्वास और छल किया जाता है। दहेज कम लाने पर उसे यातनाएँ दी जाती हैं और जिन्दा जला दिया जाता है। मेरी समझ में नहीं आता कि मनुष्य नारी को न जलाकर दहेज प्रथा को ही क्यों न जला दें? दहेज-प्रथा को काष्ठ के टुकड़े समझ कर दहेज को होली जला दो। यदि दहेज की समस्या नहीं है तो घर के काम-काज खाना-पकाना इत्यादि में छोटी-छोटी त्रुटि पर भी उसे पीटा जाता है—यह कहकर कि नमक

ज्यादा है या मिर्च कम है और निःसन्तान होने पर उसे बांझ करार दे दिया जाता है। चाहे उसमें कसूर पुरुष का क्यों न हो! ऐसी अवस्था में वह प्रतिकार स्वरूप कुछ नहीं कहती। सिवाय इसके कि वह स्वयं ही घुल-घुल कर प्राण त्याग देती है।

हा ! अबला आ अरी अनादर, अविश्वास की मारी।

मर तो सकती है अभागिन, कर न सके कुछ नारी ॥ (द्वापर)

उक्त पद मैथिलीशरण गुप्त का है। जिनके अन्तःस्थल में नारी जाति के प्रति अगाध करुणा का असीम सागर लहरा रहा है। करुणा का अजस्र स्रोत उनके सभी काव्यों में कल-कल निनाद करता हुआ प्रवाहित है मुख्य रूप से यशोधरा और साकेत में तो हो ही रहा है।

नारी को मात्र छलना कहने वालों को अब नारी सहन नहीं कर सकती। अतः—

मुक्त करो नारी को चिरबंदिनी नारी को।

युग-युग की बर्बर कारा से जननी सखी प्यारी को ॥ (पन्त)

पर परिस्थितियों ने नारी को इतना विवश कर दिया है कि वह आक्रोश व्यक्त करने लगी है कि ओ ! पिता बनने वाले पुरुष ! बता क्या तुमने मेरा हाथ इसलिए पकड़ा था कि एक दिन मेरे मान सम्मान और मेरे व्यक्तित्व को अपमान पूर्ण हिचकोलों से तोड़ कर रख दोगे ? जिस नारी को आप पुरुष से बढ़कर कहा करते थे आज वह विलास और भोग की ही वस्तु रह गयी। पुरुष चाहे कितने ही दुष्कर्म कर ले पर वह सदैव पवित्र बना रहता है। और स्त्री पवित्र एवं महान् कृत्य करने पर भी तिरस्कृत होती है। ऐसा क्यों ? पुरुष अपने अधिकारों के मद में भूल जाता है कि पुरुष स्त्रीहेतु वरेण्य हैं तो साथ ही पिता, पुत्र और भाई भी हैं। उसे मात्र नग्न मूर्ति और वासना की पुतली समझना भयंकर भूल है। यदि स्त्री पत्नी या प्रेमिका है तो माँ, पुत्री और बहन के सम्बन्ध भी अपने जन्म के साथ लेकर आयी है।



मनुष्य को अपने जीवन में तब तक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती जब तक वह स्वमानस से अविश्वास का अंकुर उखाड़ कर फेंक नहीं देगा। पुरुष चाहे कितने भी दुराचरण क्यों न करे। उसके सभी दोष क्षम्य हो जाते हैं क्योंकि वह घर का स्वामी कहा जाता है। परन्तु स्त्री निरपराध होने पर भी लांछनों से पूर्ण लांछित होती है। यह विडम्बना नहीं तो और क्या है? यह मूर्ख पुरुष नहीं जानता कि वह स्वयं भी नारी की कोख से जन्म लेता है। फिर नारी के प्रति इतना घोर अविश्वास क्यों? राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

“उपजा किन्तु अविश्वासी नर, हाय ! तुम्हीं से नारी।

जाया होकर जननी भी है, तू ही पाप पिटारी।” (द्विपर)

कितनी करुणा है नारी के जीवन में। नर को जन्म देकर भी वह स्वयं उसी नर की दृष्टि में पाप-पिटारी ही बनी रहती है। देवकी के भाई कंस ने उसको कितना उत्पीड़ित किया। एक बार नहीं बल्कि भाई होकर भी सात आठ बार उसके गर्भ को आहत करने की कुचेष्टा की। तभी तो वह चिल्ला उठती है “हा भगवान् ! हो गई व्यर्थ यह प्रसव वेदना सारी; लेकर यह अनुभूति चेतना, कहाँ रहे यह नारी।” यशोधरा काव्य में गुप्त जी ने सबल स्वर से उद्घोष किया है—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।

आंचल में है दूध और आँखों में पानी ॥

जिस देश में नारी को पूज्य स्थान दिया था, वहीं अबला होकर अब वह हमारे समक्ष है। अतीत युग में पुरुष-प्रधान समाज व्यवस्था थी पर अब नारी युग का प्रारम्भीकरण हो रहा है। बच्चू ! अब अधिक टर-टर की तो नारी ‘इन्दिरा’ सब ठीक कर देगी।

‘तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता थी नारी की’।

(जयशंकर प्रसाद)

वस्तुतः जिस पुरुष ने नारी की ‘सुन्दर जड़ देह मात्र’ को ही प्रमुखता दी हो, वह सौंदर्य-जलधि से अमृत कैसे लेगा, उसे तो गरल

ही पीना होगा। अधुना जीवन में दुःखों व विषमता का जड़ नारी की उपेक्षा ही है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डा० रामकुमार वर्मा आदि ने जिस १३०० से १७०० वि० तक को भक्तिकाल कहा, उसमें नारी को माया का प्रतीक मानकर निन्दा की गई थी तो १७०० से १९०० वि० तक रीतिकाल में उसका शारीरिक वासनात्मक अथवा विलासी स्वरूप ही चित्रित किया गया। वर्तमान काल में रवीन्द्रनाथ टैगोर महात्मा गांधी तथा अन्य सन्त महापुरुषों की प्रेरणा पाकर कवियों और साहित्यकारों ने भी नारी-गौरव की पुनः प्रतिष्ठा स्थापित करने का प्रयास किया है।

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी की राधा; मैथिली-शरण गुप्त की उर्मिला, यशोधरा, कुब्जा, गोपियाँ तथा कंकैयी; जयशंकर प्रसाद की श्रद्धा, देवसेना, मल्लिका, मालविका तथा ध्रुव-स्वामिनी आदि नारी पात्रों में नारीत्व और मातृत्व का उच्चतम रूप प्राप्त होता है।

प्रत्येक चिन्तक ने स्वीकार किया है कि यह नारी पुरुष को सन्मार्ग की ओर प्रेरित तो करती है साथ ही समय-समय पर उसकी उच्छृंखलता को मर्यादित भी करती हैं।

नारी तो नारी ही है। इस वस्तु में भेद नहीं, दृष्टि में भेद है। इस पर गम्भीरता से विचार करना मानव मात्र का कर्त्तव्य है और यदि अहंकार में ही रहोगे, पूर्वाग्रह का त्याग नहीं करोगे तो नारी भी कह उठेगी—“गरब न करि हो संइभरि बाल, ता सरिषा अवर घणा रे भूआल”। ये शब्द कवि नरपति नाल्ह ने राजमति द्वारा बीसलदेव के प्रति कहलाए।

इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद ने भी कामायनी में लिखा है। प्रसाद ही क्यों समस्त छायावादी कवियों ने भक्तिकालीन कवियों के विपरीत नारी की महत्ता एवं उसकी स्वतन्त्र सत्ता का गुणगान किया

है। रीतिकाल में आकर जो नारी मात्र विलास एवं वासना की सामग्री रह गई थी, छायावादी कविता में आकर वह गरिमा से मण्डित हो गई। प्रसाद ने कामायनी में नारी को दया, ममता बलिदान सेवा आदि गुणों से युक्त कहा है—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में।

पीयूष स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में ॥

परन्तु पुरुष जब बाह्य स्थिति का सामना करने में असमर्थ हो जाता है तो घर आकर मार-पीट करना, आक्रोश दिखाना, भोजन की थाली फेंक देना अपना जन्मसिद्ध या पुरुषोचित्त अधिकार समझते हैं किन्तु माँ सहनशीला, क्षमा की देवी और संतोष की मूर्ति होती है। वह स्वयं कष्ट महन करके भी घर की व्यवस्था करती है। संतान का पालन-पोषण करती है। ऊपर से अत्याचारों को हंसकर सहन करती हुई उन्हें सुमार्ग पर लाने का सफल प्रयत्न करती है।

भगवान महावीर ने नारी को केवल पुरुष के समकक्ष ही नहीं माना बल्कि चंदन बाला की बेड़ियाँ काट कर यह स्पष्ट कर दिया कि यह नारी विश्व की अमूल्य निधि है। 'यह महापुरुषों की खान है। इसकी रक्षा, आदर, सम्मान करना हमारा कर्त्तव्य है। क्योंकि वह राष्ट्र की ऐसी अमूल्य सम्पत्ति है जो रत्नों को उगलती है। यह गृह का दीप है जो स्वयं जलकर स्निग्ध प्रकाश देती है। एक अन्य पक्ष की कहावत है कि—

“माँ आई मुट्ठी में, बाप जावे भट्ठी में” यद्यपि यह कहावत भी प्रचलित है। कारण यही है कि जीवन नैया की सुकान माँ हैं, माँ रहित बालकों की स्थिति मूक प्राणियों की भांति, अबोल जीवों की तरह दया-जनक और असह्य हो उठती है। प्रमाण चाहिए? साहित्यशास्त्र के अन्वेषण में न जाकर आप अपने घर में पास पड़ोस में भी देख सकते हैं। जैसे हमारे पैर में कांटा लगने पर, आंख में तिनका गिरने पर, दांत में फांस चिपक जाने पर वह खटकती रहती है और हमें असह्य हो जाती है। वैसे ही माँ-विहीन जीवन असह्य लगता है

सूत कातती माँ घोड़े चढ़ते पिता की अपेक्षा सहस्र गुनी अच्छी और उत्तम होती है ।

“माँ पिसारी, बाप लखेश्वरी तो पण माँ चोखी ।”

इस लोकोक्ति के अनुसार निर्धनावस्था में माँ तो गेहूँ-अनाज पीसकर, किसी के बर्तन धोकर, सूत कातकर भी अपने पुत्र का पालन-पोषण कर लेती है और पिता मिल-मालिक होते हुए भी उसे बड़ा बनाने एवं उसमें मनुष्यत्व की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर सकता है । माँ रहित जीवन टूटे हुए घट के टुकड़ों के समान है जो प्रत्येक के पैर नीचे कुचला जाता रहता है । इसीलिए ‘युगद्रष्टा प्रेमचन्द’ पुस्तक में परमेश्वर द्विरेफ ने माँ के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है—

माता का वात्सल्य धन्य है, धन्य-धन्य उसकी उदारता ।

सब कुछ हों पर माँ न रहे तो जीवन मैं सारी असारता ॥

माँ का हृदय न जाने कौन से अत्युत्कट अणुओं से निर्मित होता है । उसका हर चिन्तन, प्रत्येक कदम प्रतिपल संतान हेतु अनूठा वात्सल्य लेकर चलता है । एक शिकारी हरिणी को घेरकर धनुष से बाण संधान करने वाला था । एकलव्य भील की भांति नहीं जिसने एक क्षण में कुत्ते का मुख बाणों से भर दिया । अचानक आकाशवाणी हुई—

रहने दे ! रहने दे ! यह संहार युवान तू ।

घटे न ऋरता ऐसी, विश्व सौन्दर्य है कुमलूँ ॥

रहने दे ! रहने दे !

सेठ सुदर्शन अपने शील पर अटल रहे तो राजा हरिश्चन्द्र सत्य





पर । भ.महावीर अहिंसा पर प्रबल रहे तो गांधीजी निद्राधीन राष्ट्र को जागृत करने पर । गौतमबुद्ध ध्यानावस्था में अडिग रहे तो ईशा मसीह धर्म पर । राजा मेघरथ जीवदया हेतु बलिदान पर तुले थे तो यह शिकारी शिकार पर । मृगया कह उठी—गगन को चूसकर, भंभावात तूफान को रगड़कर, स्वयं का प्राप्य हासिल करलो । अम्बर का चुम्बन लेकर, आकाश की तरंगों में भूमकर मेरा उल्लास खींच लो, बाण मार दो ! मार दो बाण ! सम्पूर्ण शरीर ले लो, सारा सौन्दर्य वसूल करलो, पर थोड़ा ध्यान रखना । इन दो स्तनों को अवशेष रखने की अनुकम्पा करना ! मेरा नवजात शिशु अभी घास भक्षण नहीं कर सकता । मेरा दूध पीने के लिए वह बैठा सतत् अव्याहत प्रतीक्षा करता होगा । लालायित है वह । हे बन्धु ! तुम्हें शुद्ध अन्तःकरण से कोटि-कोटि विनती करती हूँ कि कृपा कर इन दो पयोधरों को छोड़ देना । मेरा हृदय, माँ का हृदय है । मेरा यही उपदेश है—

आदाय माँस मखिलं स्तन वर्जिदंगाद् ।

माँ मुंच वागुरिक ? यामि कुरू प्रसादम् ॥

मन्मार्गं वीक्षणं पराः शिशवो मदीयाः

अद्यापि शस्य कवल गृहणादभिज्ञा ॥

क्या हरिणी की उत्पीड़ा का शिकारी पुरुष के दिल पर असर हुआ होगा ! शायद ही.....।

इसीलिए तो हमारे देश को 'मातृभू' कहा जाता है, 'पितृभू' अल्प ! कल्पना कीजिए मातृ भू की जगह या भारत माता की जगह भारत पिता कहा जाता तो 'वंदेपितरं' कभी चल पाता ! रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मातृ भूमि को सम्बोधित, किया, पितृभूमि को नहीं। उन्होंने कहा "हे मातृभूमि ! धन और कीर्ति तुझ से ही मिलती है और यह तेरे ही आधीन है, चाहे दे या पास रख। लेकिन मेरा गम (शोक) बिल्कुल मेरा अपना है और जब मैं भेंट करने के लिए लाता हूँ तो तू मुझे आशीर्वाद देती है।"

,'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।' (अथर्ववेद) भूमि मेरी माता है मैं उसका पुत्र हूँ। शक्ति संगठित कर बोलो—वंदे मातरम्, वंदे मातरम्.....।

अरे शिकारी ! शेष तन ले तू भले सारा काट।

पर पयोधर शेष रख, शिशुचन्द्र जोते हैं बाट ॥

तिर्यञ्च् प्राणी के पशुओं में पुत्र-पुत्री के प्रति इतना समर्पण भाव है तो फिर मनुष्य गति वाली माँ का हृदय तो अवर्णनीय है।

स्पष्ट होता है कि माँ का प्रेम अगम्य है, जिसका कोई किनारा नहीं। उसका प्रेम अनुपम और अमित है। सागर के सदृश विशाल है। "प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान" (रसखान) इतना ही नहीं प्रांजल और समुज्ज्वल भी है। हरिणी पशु होते हुए भी बच्चे के प्रति उसका अपार प्रेम है। जिसके मन में त्याग करने की प्रति-स्पर्धा है, वास्तव में वह प्रेम का ही रूप है।

शिकारी तो क्या ? मृगी अपने शिशु को बचाने के लिए सिंह से भी सामना कर बैठती हैं। वह अपनी शक्ति को जानती भी है कि

उसकी शक्ति सिंह की शक्ति के समक्ष पहाड़ के सामने एक छोटा-सा कंकर हैं। पर ममता तो ऐसी ही है कि पहले माँ मरेगी फिर शिशु।

यह वातावरण 'मानतुङ्ग सूरि' रचित 'भक्तामर स्तोत्र' ग्रन्थ में मिलता है—

”प्रीत्माऽऽत्म वीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं ।

नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥

अर्थात्—

“ज्यों प्रीतिवश निज शिशु बचाने को मृगी जाती भली ।

वनराज से निर्भय बनी साहस सहित भिड़ने चली ॥

(भंवरलाल नाहटा)

प्रतिपल-प्रतिक्षण सन्तान का कल्याण चाहने वाली अभ्युदयाकांक्षिणी माँ हमेशा उदार हृदया है। पत्थर जब खान में से निकलता है, तब उस की अवस्था बेड़ोल, खुरदरी एवं भट्टी होती है। उस स्थिति में उस का कोई उपयोग नहीं होता। परन्तु जब वह शिल्पी के हाथों में चला जाता है तो वह हथोड़े मार-मारकर, उसमें अपनी कला उड़ेल कर, उसे सम, सुन्दर और कलामय बना देता है। हमारे जीवन का प्रारम्भ भी पत्थर के समान है, परन्तु उसमें जीवन-शिल्पी माँ असंस्कृत एवं भट्टे जीवन रूपी पत्थर को भी सुन्दर और आदर्शमय बना देती है।

संतान हेतु अपने पेट पर पट्टी बांध कर उसको खिलाती है, उसकी असंख्य भूलों को क्षमा कर देती है ऐसी माताओं के ज्वलंत उदाहरण बिश्व में सर्वकाल एवं सर्वस्थल पर परिलक्षित हुए हैं, होते हैं और होते रहेंगे। यद्यपि हमने अतीत को देखा है व्यतीत को नहीं। पर शास्त्र वचन मेरी बात के साक्षी है—

माँ बेटे का रिश्ता वह है, जो कभी टूट सकता नहीं है।

छूट जाये चाहे सारी दुनियां, पर यह टूट सकता नहीं है ॥

इसी कारण अधोलिखित कहावत ने जगत् की तमाम भाषाओं में समुचित स्थान प्राप्त किया है।

“पूत कपूत हो सकता है, पर माता कुमाता नहीं।”

माँ-पुत्र में समरसता होती है। दो विपक्षी वस्तुओं में एकत्व की भावना ही समरसता है। द्वन्द्व के अभाव से दो विपक्षी वस्तुओं में तादात्म्य स्थापित हो जाता है। जीवन में अशान्ति का कारण समरसता का अभाव ही तो है।

हमारे जीवन में उस विशाल हृदय के प्रति समन्वय की भावना उत्पन्न नहीं हो जाती तब तक हमें दुःख-दैन्य संघर्ष आदि का सामना करना पड़ेगा। अतः उसके प्रति श्रद्धा रखो पर तमसी-राजसी नहीं, पूर्णसात्विकी श्रद्धा। वहाँ हृदय बल अधिक और बुद्धि बल अल्प। संशय मत रखो। जहाँ संशय का आगमन हुआ वहाँ श्रद्धा टिकती नहीं। “संशयत्मा विनश्यति” अर्थात् जो संशय का पुतला है वह नष्ट हो जाता है और “यो यच्छ्रद्धः स एव सः” (भगवद् गीता) जिसकी जैसी श्रद्धा उसका वैसा ही मन। यदि आपमें उसके प्रति श्रद्धा होगी तो अपना रंग जरूर दिखायेगी। इसीलिए कहा है “श्रद्धा फलति सर्वत्र” अर्थात् श्रद्धा सर्वत्र फलित होती है।

यह सब पढ़कर आपको अजीब सा तो नहीं लग रहा है। कहीं मेरे शब्दों को गप्प समझकर पुस्तक से मन को हटा तो नहीं दिया। विश्वास कीजिए, आपने अभी तक जो भी पढ़ा है उसको मैंने श्रेष्ठ आधार पर व श्रद्धा पूर्वक लिखा है।

कोई रोगी जब चिकित्सक से इलाज करवाता है और स्वस्थ हो जाता है तो उस पर रोगी की श्रद्धा हो जाती है। हितैषी माँ पर भी बालक की अत्यन्त श्रद्धा होती है। परन्तु बड़ा होने पर उसी में अश्रद्धा क्यों हो जाती है ?

समरसता के अभाव के कारण विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित होती है। तभी तो महाकाव्य कामायनी में मनु को उपदेश सुनाया गया है—



“सब की समरसता का कर प्रचार,  
मेरे सुत सुन माँ की पुकार ॥”

(कामायनी-प्रसाद, श्रद्धा सर्ग से)

पर माँ की पुकार को कौन सुने ? उसकी ममता को कौन पहचाने ?

माँ की ममता की आज मैं आपको एक कहानी सुनाता हूँ, उसकी शान बताता हूँ, गौर से पढ़ना माँ के जाये ! एक माँ का नौजवान पुत्र था। पिता का प्राण प्यारा। माँ का राजदुलारा। एक दिन सायंकाल वह अपने मित्र के साथ मनोरंजन के लिए जाते जाते एक वेश्या-गृह में प्रवेश कर गया। इसी का नाम है “श्रौरत”। श्रौर बन गया वैसा ही जैसा उसकी संगत से बनना चाहिए। कौन मनुष्य कैसा है, यह पूछना चाहते हैं तो पहले मुझे यह बता दें कि वह ज्यादातर किस के साथ रहता है। उसकी संगति कैसी है तत्पश्चात् मैं बता दूँगा कि अमुक मनुष्य कैसा है।

संगति का असर अवश्य पड़ता है। मनुष्य ही क्या पशु-पेड़ आदि पर भी संगति का अच्छा-बुरा प्रभाव पड़ता रहता है। मानव तो सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी है, इसलिए उस पर अच्छे-बुरे संग का प्रभाव पड़े तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? उस युवक में जितना भी विनय-विवेक था वह सब उस हसीना के साथ से समाप्त हो गया। तुलसी ने कहा है कि “बिन संतसंग विवेक न होई” वह वेश्या पर दिलोजान से दीवाना हो गया, उसकी मुहब्बत में वह शहजादा हो गया। उसके बिना वह भोजन-पानी भी नहीं कर पाता। यदि कर भी लेता तो हजम नहीं होता। “काम बढ़े तिय के संग कीने”।

एक दिन अक्सर देखकर उस पुत्र ने फरियादी बन कर कहा— हे शहजादी ! यदि बुरा न मानो तो हम प्रेम-विवाह कर लें।

तुनक कर नाज से वह बोली—हे बिस्मिल ! ऐतबार नहीं, कहीं धोखा दे गया तो। अब अधिक दिल मत भर मौहब्बत का। बातों

ही बातों में उसने कहा—क्या तुम मुझ से सच्चा प्यार करते हो ?

नवयुवक बोला—“अब मैं तेरे बिना जिन्दा एक पल भी नहीं रह सकता।” वासना-पूर्ति हेतु तड़कते युवक को प्रत्युत्तर रूप में वेश्या बोली “यदि तुम मुझ से सच्चा प्यार करते हो तो मेरे कथनानुसार करना होगा। जो मुझे चाहिये वह लाकर देना होगा।” आंख का अन्धा शायद ठीक हो सकता है पर प्रेम का अन्धा कभी नहीं। वह तो उसके प्रेम में पागल हो चुका था। “जो माँगोगी अवश्य मिलेगा। तेरे लिए ज़रो-जमीन तो क्या, आकाश के चाँद सितारे भी पृथ्वी पर ला दूंगा।” युवक ने तत्काल कहा। आखिर वह तो वेश्या है। उसके दिल में दया प्रेम कहाँ से आये हृदय की गहराई में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती। उसने कहा—मैं तुम्हें अपने प्यार के काबिल तभी समझूँ जब तुम अपनी माँ का सीना चीर कर उसका दिल मुझे ला दो। अन्यथा ये सब तेरी काल्पनिक और झूठी बातें हैं।

इतना सुनते ही वह हैवान खुशी से उछल पड़ा, शैतान बन गया। बोला यह कौन सी बड़ी बात है। मैं तो तेरे लिए सर्वस्व न्यौछावर कर सकता हूँ।

सूर्य की किरणों की भांति द्रुत गति से वासना के रंग में रंगा सीधा बाजार गया। वहाँ से तेज धार का चाकू खरीद कर घर की तरफ चल पड़ा। माँ के प्रेम को भूल चुका था। वेश्या भी नारी और उसकी माँ भी। परन्तु एक का प्रेम अशुद्ध तो दूसरी का निर्मल गंगा के जल की भाँति शुद्ध। एक का शारीरिक ताप है तो दूसरी का मानसिक। वह वासनाजन्य होता है किन्तु यह भावना की उच्च भूमि से आधारित होता है। पर क्या हो ? उसकी बुद्धि नष्ट भ्रष्ट हो चुकी थी। कायिक ताप ऊष्णता के चरम-शिखर तक पहुँच गया था। रूप सुन्दरी के रूप के वशीभूत होकर माँ का अन्त करने के लिए तैयार हो गया। इसीलिए वानर-जाति ने आदमी पैदा करने बन्द

कर दिये । वे जानते हैं, वर्तमान युवा सपूतों को । हरिराम व्यास जी ने 'व्यासवाणी' में लिखा है—

जिहि कुल उपज्यो पूत-कपूत ।

ताको बंश नाम है जैहें गिधयो जमदूत ॥

घर पहुंचा । माँ निद्राधीन, पुत्र का चिन्ताशील चित्त उत्तेजित । हाथ में तेज धार वाला चाकू । और माँ.....बेटा.....बेटा..... माँ.....ओह sss.....। हा पुत्र ! रक्त ही रक्त । रक्त का फव्वारा सा छूट गया । हाथ भर चाकू माँ के जिगर के पार हो गया । चीख निकलते ही महाप्रलय का सागर उमड़ पड़ा । आसमान चिंघाड़ उठा, पृथ्वी थर्रा उठी । दिल को फाड़कर कलेजा निकाल कर युवक दौड़ पड़ा अनवरत गति से अपनी लैला को मनाने के लिए । आज उसकी मल्लिका खुश हो जायेगी । मन में प्रसन्नता । मनही मन मुस्कराहट ! वाह रे जालिम ।

आह.....।

रात्रि का समय ठोकर लगी और उसी के साथ गिर पड़ा, हाथ से छूट गया माँ का कलेजा, मिट्टी से लिप्त हो गया । संभला, पुनः उठाने लगा । यह क्या ? आकाश से आकाशवाणी हुई । लेकर अंगड़ाई कलेजा बोला.....

“हाय रे लाल ठोकर लगने से कहीं तेरे चोट तो नहीं आई ।”

परमात्मा के दर्शन हुए, आत्मा स्वच्छ हो गई । अग्नि के दर्शन हुए, मोम पिघल गया । हथोड़े के दर्शन से पत्थर चूर-चूर हो गया । पर.....। पर पत्थर को भी पिघला कर पानी बनाने की प्रबल शक्ति रखने वाले इन शब्दों का भी उस नीच पर कोई असर नहीं पड़ा । कायिक प्रेम ने उसे अंधा ही नहीं बहरा भी कर डाला था । भागता हुआ माशूका के द्वार पर जा पहुंचा । दरवाजा खटखटाया । घंटी बजी । वह अन्दर से आयी ।

कलेजा डालकर उसके कदमों में बोला—लो मेरी जान ! जो

माँगा वही लाया। यह देखकर वह हैरान हो गयी। आवेश में आकर बोली—हे कामिन ! धन्य हो मैंने अनेक कामी देखे, पर तुभसा आशिक कुर्बान नहीं। पर हकीकत में तू हैवान है, इन्सान नहीं। नालायक हो……चले जाओ यहाँ से……जो अपनी माँ को प्यार न दे सका, वह मुझे क्या देगा ? अपनी माँ का जो न हो सका। वह दूसरों का क्या होगा ?

“धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का”। रोता-पीटता घर की तरफ बढ़ चला। अपने कुकर्म पर पछतावा करने लगा पर अब क्या हो सकता था ? “अब पछताये क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत”। कपूत की करनी से सबक लीजिए।

यह दृष्टान्त मैंने इसलिए दिया है कि “सेनेका” का विचार मेरे मस्तिष्क में हथौड़े मार रहा है कि “अच्छे दृष्टान्त हमको अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं, एवं महान् आत्माओं का इतिहास हमें उदार विचार के लिए प्रोत्साहित करता है।” और “दृष्टान्त उपदेश से अधिक फलोत्पादक होता है”—डा० जान्सन (Example is more efficacious than precept.)

उपर्युक्त कहानी में भी पुत्र ने माँ के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया पर फिर भी माँ का पुत्र के प्रति असीम वात्सल्य दृष्टिगोचर हुआ। हमें साहित्य के प्रांगण में भी इसी तरह से माँ के वात्सल्य का आस्वाद मिलता है।

कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने नारी को माँ के रूप में अतुल वात्सल्य की मूर्ति माना है। जीवन के सभी उद्देश्य उसी में केन्द्रित हैं। कविवर पंत माँ के नैसर्गिक सुख से वंचित रहे। अतः उन्होंने इस सुख की क्षति पूर्ति प्रकृति से की—

माँ मेरे जीवन की हार।

तेरा उज्ज्वल हृदयहार हो अश्रुकणों का यह उपहार।

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में, “इन विविध रूपों में मातृत्व

का सुसंस्कृत सामाजिक संगठन है। पारिवारिक दृष्टि मातृत्व पूज्य हैं।” यह सर्व विदित है कि सुकवि पंत को माँ का असीम प्यार नहीं मिल पाया। इसलिए प्रकृति के विशाल प्रांगण में उसे माँ की विराट् उदात्त-शक्ति का सहज प्रतिफलन मिला—

माँ तेरे दो श्रवण पुटों में  
निजक्रीडा कलरव भर दूँ !  
उभर अर्धखिली बाली में।

बीसवीं शताब्दी के बुद्धि प्रधान-युग की अन्यतम कृति कामायनी में भी हमें माँ के वात्सल्य के छोटों की सुष्ठु व्यंजना सर्वत्र दिखाई दे ही जाती है। श्रद्धा विरह व्यथिता है। किन्तु जैसे ही वह अपने पुत्र मानव की किलकारी सुनती है तो हृदयस्थ समस्त उद्वेग-जनित भावों को वह भूल जाती है। द्विगुणित उत्कंठा के साथ उठकर दौड़ती है और धूल-धूसरित बालक की बाँहें पकड़ उससे लिपट जाती है। स्वप्न-सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियाँ वात्सल्य की भव्य व्यंजना करती हैं—

माँ—फिर एक किलक दूरागत गूँज उठी कुटिया सूनी,  
माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में, लेकर उत्कंठा दूनी;  
लट री खुली अलक रज धूसर बाँहें आकर लिपट गई।  
निशा तापसी की जलने की धधक उठी बुझती धूनी ॥

कामायनी में श्री जयशंकरप्रसाद ने जो बच्चे का अनुराग सौन्दर्य तथा अनजानेपन व भोलेपन की जो अति सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति की तो कवि पन्त जी भी नहीं बच पाए। उन्होंने लिख भी दिया—

“शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु सरल कमनीय”।

‘मानव’ पुत्र की दूरागत किलकारी सुन सारी विरह-व्यथा को भूलकर उत्सुक हो बालक को गोदी में उठाकर कहती है—

“कहाँ रहा नटखट तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना।  
अरे पिता के प्रतिनिधि तू ने भी तो सुख दुःख दिया घना ॥”

इसी परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त का अमर महाकाव्य 'साकेत' में हम 'उमिला' और उपेक्षिता 'कैकेयी' को निखारें तो पढ़ते-पढ़ते कैकेयी प्रभृति के अनुताप से परिष्कृत हृदय वाला पाठक द्रवित हो उठता है और वह उसके महा-अपराध को भी भूलकर कैकेयी के प्रति सहानुभूतिशील हो उठता है । क्योंकि क्षणिक परिस्थितिवश कोई भूल भले ही हो जाय पर अन्त में तो नारी माँ का रूप महनीय है—

“यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर तो वह नारी उर के भीतर ।”  
(युगवाणी)

समाज के हृदय में जो युगों-युगों से घृणा और तिरस्कार का कलुश भाव प्रतिष्ठित हो चुका है उस कैकेयी के प्रति । वह पश्चात्ताप की धधकती होली में जलती हुई कैकेयी के निम्न वाक्यों के वाचन मात्र से अनायास धुल जायेगा ।

युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी,  
रघुकुल में थी एक अभागी रानी ॥  
X X X

थूके मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,  
जो कोई कुछ कह सके, कहे, क्यों चूके ।  
छीने न मातृपद किन्तु भरत का न मुझसे,  
हे राम दुहाई करूँ और क्या तुझ से ।  
कहते आते थे यही सभी नर देही,  
माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही ।  
अब कहें सभी यह हाय विरुद्ध विधाता,  
हे पुत्र पुत्र ही रहे कुमाता माता ।  
बस मैंने इसका बाह्य मात्र ही देखा,  
दृढ़ हृदय न देखा, मृदुल गात्र ही देखा ॥

जोधपुर नरेश विजयसिंहजी ने माँ के दिल को पहंचान लिया, उसके कष्टों का अनुभव कर लिया । जब उन्हीं के दरबार में आकर एक

वृद्धा ने अपना दुखड़ा रोया कि मेरा बेटा युवक हो गया है, यह बात अच्छी है पर वह मुझे हमेशा दुत्कारता रहता है कि तूने मुझे नौ मास तक पेट में रखा तो मेरे पर क्या अहसान किया ? आज चाहे तो नौ महीने के नौ टके भाड़े के रूप में ले सकती है ।

तत्काल राजा ने उसके पुत्र को दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी । पुत्र के उपस्थित होने पर जन्म के समय जितना वजन बच्चे का होता है, उतना बड़ा पत्थर उसके पेट पर रखवा कर गीले चमड़े से कस कर बंधवा दिया । सूर्य के प्रचंड ताप में खड़ा करने से चमड़ा सूख कर कड़ा होने लगा । चमड़े का चुस्त होना शरीर में असह्य पीड़ा का आविर्भाव था । पीड़ा से व्याकुल होकर उसने राजा से क्षमा याचना की भीख मांगी और जीवन भर माँ की सेवा करने की बात करन लगा ।

प्रति उत्तर में राजा ने उससे कहा—तेरी माँ की सेवा तो राज-दरबार से हो ही जायेगी । पर नौ मास के स्थान पर नव दिन तक तुझे अब इसी प्रकार रहना होगा—

भला बता तूने किया, मुझ पर क्या उपकार ।

नव मासों के नव टके देने को हूं तैयार ॥

नौ दिनके पश्चात् फिर तुझे नौ टके भी नहीं देने पड़ेंगे और बाद में तुझे मुक्त भी कर दिया जायेगा । साथ ही बूढ़ी माँ से उऋण भी ।

दर्द के मारे उसने गिड़गिड़ा कर राजा से छोड़ देने की प्रार्थना की और माँ की सेवा करने का पक्का वचन दिया । राजा ने उसे यह कह कर मुक्त कर दिया कि माँ के ऋण से कोई पुत्र कभी भी मुक्त नहीं हो सकता ।

आज पंचम आरे में माँ की प्रेम साधना एक दीर्घ-यात्रा सृदश ही रही है जिसका आरम्भीकरण तो पुत्र के प्रति गहरी आसक्ति और अत्युत्कृष्ट मनोकामनाओं से हुआ और अन्त ! अन्त मानव जीवन के उस अन्तिम-पड़ाव पर हुआ जिसको मानव मात्र स्वयं की पराजय

भग्नाशा और अतृप्ति का तीर्थ स्थल मानते हैं। जिसे 'कर्म गति' तथा 'भाग्य' जैसे सुन्दर नामों से अभिहित किया जाता है।

“वाह रे जमाना और मनखे के अकला।

छालनी में दूध दूवे और दोष देवे करमला ॥”

सर्वोत्कृष्ट पुत्र की श्रेणी में “श्रवण कुमार” का नाम समादर पूर्वक ले सकते हैं। यदि पुत्र सुपुत्र हो तो कुल को नहीं सम्पूर्ण युग को चिरकाल तक स्मृति का प्रतीक बना देता है। जैसे आकाश में तारों के मध्य चन्द्रमा। चाणक्य का निम्न कथन भी युक्तिसंगत है—

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।

वासितं स्याद् वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥

(एक भी अच्छे वृक्ष से, जिसमें सुन्दर फूल और गन्ध है सारा वन इस प्रकार सुवासित हो जाता है जैसे सुपुत्र से कुल।

“बहुरत्ना वसुधरा” यद्यपि श्रवण कुमार जैसे श्रेष्ठ पुत्र रत्न वर्तमान में भी विद्यमान हैं। जिसने अपने अंधे माता-पिता को कंधे पर बहंगी (कावड़) में बैठाकर सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा कराकर उनकी हार्दिक अभिलाशा को पूर्ण किया। तन-मन धन से समर्पित होकर अन्तःकरण से आशीर्वाद प्राप्त किया।



जब यात्रा करते हुए वह अयोध्या के समीप वन में पहुंचे।

वहाँ रात्रि के समय माता-पिता को तीव्र प्यास लगी। श्रवण कुमार पानी लेने के लिए अपना तुम्बा लेकर सरयूतट पर गये।

राजा दशरथ उस समय अकेले ही आखेट के लिए निकले थे।





फल से दिव्यात्मा बनकर विमान पर बैठकर स्वर्ग को जा रहा है। श्रवण कुमार ने आश्वासन देते हुए अपने माता-पिता से कहा— आपकी सेवा करने से मैंने उत्तम गति प्राप्त की है। आप मेरे लिए शोक न करें।

सूखी लकड़ियाँ एकत्र कराकर उस पर श्रवण का मृत देह रखा गया। पुत्र को जलाञ्जलि दी और उसी चिता में गिरकर शरीर छोड़ दिया और माता-पिता उत्तम लोक को प्राप्त हुए।

इस प्रकार श्रवण ने माता-पिता की सेवा करके उस धर्म के प्रभाव से अपना तथा माता-पिता का भी उद्धार कर दिया।

धन्य हो गये वे ऐसे सपूत को पाकर जिसका नाम विश्व समाज में आदर के साथ लिया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी का निम्न कथन सत्य ही है।

“सुन जननी सोई सुत बड़ भागी,  
जो पित मात बचन अनुरागी।  
तनय मातु पितु तोष निहारा,  
दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥”

(रामचरितमानस, अयोध्या कांड)

हे माता ! सुनो ! वही पुत्र बड़ा भाग्यशाली है जो माता पिता का आज्ञाकारी होता है। आज्ञा पालन द्वारा माँ को संतुष्ट करने वाला पुत्र हे जननी सारे विश्व में दुर्लभ है।

श्रवण कुमार जैसे महापुरुषों की जीवनियाँ हमें याद दिलाती है कि हम भी अपना जीवन महान बना सकते हैं और मरते समय अपने पद-चिन्ह समय की बालू पर छोड़ सकते हैं। अमेरिकन कवि लांगफैलो के अनुसार भी—

“Lives of great men all remind us, we can make our lives sublime And departing leave behind us footprints on the sands of time.”

लेकिन आज अधिकांश लोग माँ के प्रेमोपकार से अनभिज्ञ, भ्रान्त, प्रभादी और निरपेक्ष होते हैं। विश्वपूज्य मानवतोन्नायक महावीर उन्हें कहते हैं—

“असंख्य जीवियं मा पमायए ।  
जरोवणीयस्य हु नत्थि ताणं ।”



तेरा जीवन असंस्कृत है। इसलिए प्रमाद मत कर “समयं गोयम मा पमायए”। जब प्रौढ़ावस्था का पदार्पण होगा तब ऐसे असंस्कृत व्यक्ति के जीवन की रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा। क्योंकि जब बुढ़ापा घिर आयेगा तब तक माँ का देहान्त हो जायेगा। सुबह, दोपहर और सायं। बचपन, जवानी और बुढ़ापा प्रत्येक अवस्था में यह साथ देती है। इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि माँ मानव के लिए सर्वदा प्रेरणा स्रोत रही है। समय असमय माँ ने अपनी प्रेरणा द्वारा विश्व के भाग्य को ही बदल डाला था। माँ ने सदैव कुमार्ग से बचाकर सुमार्ग पर प्रेरित किया है।

माँ द्वारा अपित क्षमा, शान्ति एवं प्रेम के दबाव में यह अनन्त शक्ति है कि उससे दबा हुआ व्यक्ति फिर कभी सिर नहीं उठाता और न आक्रमण करने आता है ! यह बात विश्व इतिहास से सहज समझी जा सकती है जो सरल व अनुभवगम्य भी है, फिर भी बुद्धिमान कहलाने वाले राजनीतिज्ञ इसे नहीं समझ पाते और शस्त्रास्त्र तैयार करके पागलों की भाँति एक दूसरे पर चढ़ बैठते हैं। जिसका नतीजा उनको माँ ही दिखा सकती है।

मध्य में कहीं युद्ध, राजनीतिक लोग टपक पड़े। भगाओ, इनकी खोपड़ी में तो गोबर भरा पड़ा है। यदि इनके मस्तिष्क का एक भी पुर्जा ढीला पड़ गया तो सारी दुनियां युद्ध के द्वारा स्वाहा समझो ! मैं माँ से प्रार्थना करता हूँ कि वह माँ, पत्नी बहन, साध्वी किसी भी रूप

में इनको सद्बुद्धि दे । क्योंकि मनुष्य का दृष्टि होती है और नारी की दिव्य दृष्टि । जैसा कि विक्टरह्यूगो ने कहा है—Man have sight women insight”

पत्नी के रूप में ? आश्चर्य क्यों ? इस रूप में भी उसने मानव को प्रेरणा प्रदान की है ।

“बन जाती है एक चुनौती जो मानव की,  
ललकार कभी देती निज पौरुष को यह ।  
देती जय का विश्वास, युद्ध का साहस,  
जीने को शुभ वरदान जगत का आग्रह ॥”

तुलसी जी की पत्नी ने उनको प्रभु-प्रेम में बंध जाने की प्रेरणा देकर सुन्दर भूमिका निभाई थी । अनेक उदाहरण……। बहन के रूप में……किस प्रकार महाराणा सांगा की धर्मपत्नी रानी कर्मवती ने अपने शत्रु मुगल-सम्राट् हुमायूँ के हृदय को राखी के सूत्र भेजकर जीत लिया और उसे समस्त शत्रुता भुलाकर मानव मात्र के लिए प्रेम में बंध जाने के लिए प्रेरित किया । दृष्टान्त कितने गिनाऊँ । ढेर सारे हैं । साध्वी के रूप में……।

साध्वी……। बड़े-बड़े आचार्यों अथवा अन्य विश्वोद्धारकों के निर्माण में महान साध्वियों का हाथ रहा है । जैन आचार्य हरिभद्र सूरि जी अपने को ‘याकिनी महत्तरा सूनु’ लिखते हैं । दादा जिनदत्त सूरि जी को दीक्षा दिलाने में भी साध्वी जी का विशेष प्रयत्न था ।

भगवान् महावीर के शिष्यों में जहाँ गौतम गणधर नाम है, वहीं चन्दन बाला अग्रगण्या साध्वी का नाम है । जहाँ आनन्द, कामदेव आदि श्रावकों का नाम आता है तो वहीं सुलसा, रेवती आदि श्रविकाओं का भी नाम आता है । महासती राजुल, मदनरेखा आदि ने तो बड़ा उच्च आदर्श उपस्थित किया है । विचलित रहनेमि को साध्वी राजुल ने प्रतिबोध देकर जैसे महावत हाथी को वश में कर लेता है उसी तरह विकारी रहनेमि को पुनः संयम मार्ग में दृढ़ किया है ।

माँ के रूप में.....ऐवन्ता मुनि की माँ यद्यपि एक माँ थी और उनके हृदय में पुत्र के संयम लेने पर अपार दुख का होना स्वाभाविक था। किन्तु उन्होंने अपने पुत्र के आत्मकल्याण में बाधा देना उचित नहीं समझा। विपरीत यह सुन्दर सीख दी.....बेटा ! तू दीक्षा लेने जा रहा है। अतः मेरा विकल और दुःखी होना स्वाभाविक है। तेरे प्रति रहा हुआ मोह मुझे रह रह कर सता रहा है एवं तेरा वियोग मेरे लिए अत्यन्त कष्टकर है। किन्तु मेरा यही कहना है कि संयम ग्रहण करके तू ऐसी करनी करना, जिससे पुनः किसी माता को तुझे जन्म देकर रोना न पड़े। क्योंकि फिर जन्म लगे तो फिर दीक्षा लेनी पड़ेगी और वह माँ भी मेरी तरह रोएगी। अतः जन्म-मरण सदा के लिए मिट जाये ऐसी करनी करना।

बड़े-बड़े योद्धाओं, सन्तों, अवतारों यहां तक कि तीर्थंकर भगवन्तों को जन्म देने का श्रेय इसी माँ को प्राप्त है अन्य किसी को नहीं हैं।

मोक्षगामी माँ की कोख से ही तद्भव मोक्षगामी तीर्थंकर और ६३ शलाका पुरुषों की उत्पत्ति होती है। गर्भ के पूर्व होने वाले १४ स्वप्नों को देखने की अधिकारी भी है। सभी महान कार्यों के प्रारम्भ में इसी का हाथ रहा है।

फेंच कवि व राजनीतिज्ञ लमार्टिना ने तो स्पष्ट कहा है "There is a woman at the beginning of all great things."

माँ वह प्रथम व्यक्ति है जिसके सम्पर्क में मनुष्य जन्म के तुरन्त बाद आता है। यह भी शैशव काल में मानव जीवन की नींव रखती है। इतिहास साक्षी है कि सृष्टि में जितने महापुरुष हुए हैं उन्हें महान् बनाने में उनकी माँ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। शिवाजी..... यदि शिवाजी की माँ उनमें वीरता का संचार न करती तो वे कभी भी महान् योद्धा नहीं बनते। गाँधी जी की माँ उनमें यदि राष्ट्र प्रेम और धर्म की रुचि पैदा नहीं करती तो क्या आज वे 'राष्ट्रपिता'

कहलाते। इतिहास असंख्य उदाहरणों से भरा पड़ा है। सारे एकत्रित कर दिये तो कबीर जी की आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सुधक्की भाषा या खिचड़ी बन जायेगी। परन्तु अपने तो “सूप सुभाव वाले” सार-सार को गही रहे, थोथा देइ उड़ाय।” माँ की महानता बताते हुए एक बार नेपोलियन ने कहा था “Give me a good mother I will give you a good nation.”



माँ की ख्याति सर्वत्र व्याप्त है। वह सरोवर के समान शांत, आकाश की भाँति विशाल हृदया, संतों की तरह सहनशीला है। इन सब कारणों से ही तो धर्म ग्रंथ गुणगान कहते कभी थकते नहीं। ‘मातृ देवो भव’ की भावना तो अपनी आर्य संस्कृति का प्राण है। कुरान का वचन पढ़ने के लिए अब हम जरा कुरान शरीफ की ओर बढ़ते हैं।

हदीस शरीफ—“रसूलल्लाह सल्लल्लाहो अलेह सल्लम ने”—‘जेरे कदमे वाल्दा फिरदोसे वरी है’—‘वाल्दा के चरणों में जन्त है।’ (माँ के पद पंकज के नीचे ही स्वर्ग है।) अतः धन, मन, तन से माँ की सेवा में लगना स्वर्ग को प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील होना है। एक बात और भी महत्वपूर्ण है कि हाथ की तर्जनी अंगुली के नीचे के स्थान में मातृतीर्थ होता है।

हम देवी देवताओं की सेवा, भक्ति, प्रार्थना, नमस्कार पूजा आदि करते हैं। उनको प्रसन्न करने हेतु धर्माचरण करते हैं। वास्तव में सर्व देवी देवता या तीर्थों में उत्तम स्थान माँ का है। परन्तु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में हम उसकी अवहेलना करते हैं। क्या यही कर्त्तव्य है? नहीं। संतान मात्र का कर्त्तव्य है कि वह ऐसा कार्य न करे जिससे माँ का जी दुःख पाये।

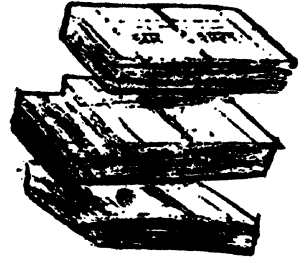
आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती का उपदेशात्मक कथन यथार्थ है कि “पूजा के योग्य सबसे प्रधान देवता माता है। पुत्रों को चाहिए कि माता की सेवा तन-मन-धन से करें। उसे सब प्रकार से प्रसन्न रखें, उसका अपमान कभी न करें।” माँ की सेवा करना, पूजा करना, भगवान् के चरणों की सेवा-पूजा करना है। जो इसकी पूजा करने में प्रबल पराक्रम दिखा सकता है वह धर्मक्षेत्र में भी प्रबल पराक्रम दिखा सकता है। विकास की प्रथम सीढ़ी तो यही है।

अपना जीवन तो समाया रहना चाहिए माँ-आज्ञा पालन में। माँ की आज्ञा का पालन करना तो पल-पल की आराधना है। कहावत है—Work is workship उसका कार्य करना ही उसकी पूजा है।

पन्चीस रुपये देने वाले सेठ की नौकरी में आप नियमित आते हो, उसकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते हो, पैसों के चन्द टुकड़ों के लिए सौ भाईजन के मध्य बेइज्जती करवा लेते हो। पर क्या माँ की सेवा व आज्ञा का पालन आपसे नहीं हो सकता। माँ की आज्ञा अमल करने में अधिकांशतः आप अकृतज्ञ हैं। दीर्घ दृष्टि डाल कर देखिये कि किसकी आज्ञा का पालन अधिक लाभदायी है। दीर्घ दृष्टि से विचार करोगे तो स्वतः ही सत्य वस्तु वस्तु हाथ लगे बिना न रहेगी। सही दिशा निर्देश का ज्ञान होने पर शूल निकालें और जो कांटे हमसे बिछ गये हैं उन्हें चुन-चुन कर अलग कर दें। जिससे जीवन में सुगन्ध प्रवाहित होगी।

मां से प्रेम करने में मस्ती आनन्द हासिल होती है। जिसके बिना जीवन नीरस है। ज्ञानमार्गी शाखा के प्रवर्तक संत कबीरजी भी मीरा की भांति ढिंढोरा पीट-पीट कर चेतावनी देते हैं “ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय”। सारे धर्मग्रन्थों का सार ही प्रेम है। जैसा कि ‘उमास्वातिकृत’ ‘प्रशम रति’ प्रकरण में जिसकी टीका हरिभद्र सूरि

ने की है, मैं मुमुक्षु ने प्रश्न किया कि वस्तु तो एक ही है। कुछ ही शब्दों में सम्पूर्ण धर्मग्रन्थों का सार निकल आता है। मूल में तो बात यही है कि प्रेम करो, द्वेष नहीं। सारे संतों की वाणीभी यही कहती है। प्रेम तो केवल ढाई शब्द ही है और इन्हीं शब्दों को अपनाना है तो इतनी रामायण क्यों ?



इतना साहित्य और उपदेश क्यों ? नूतन तो इसमें कुछ भी नहीं है।

प्रत्युत्तर रूप में कहा कि यद्यपि यह कथन यथार्थ है, तथ्य तो इतना ही है, आचरण में तो यही लाना है। परन्तु यह सत्य इतनी सरलता से आचरित हो जाये तो फिर बात ही क्या है ? प्रेम और वैर की भावनाओं को सूक्ष्म नहीं बल्कि विशिष्ट दृष्टि से देखो।

यदि प्रेम-मलय शीतलता प्रदान करता है तो वैर ताड़ को बढ़ाता है। प्रेम यदि सदा शुभाशीष बांटता है तो वैर अभिशाप। प्रेम यदि नदी की मन्द धार की गति है तो वैर मरुस्थलीय उग्र आंधी। यदि प्रेम मुस्कान तो वैर व्याधि। वैर यदि रक्त चूसता है तो प्रेम उसे सवाया करता है।

अतः माँ से प्रेम करो, उसकी उपासना करो, भक्ति करो और वह भी प्रेम सहित क्योंकि “बिना प्रेम जो भक्ति है, वह निज दम्भ विचार।” माँ के प्रेम का प्रतिकूल प्रसिद्ध निम्न पंक्तियां दिग्दर्शित कराती हैं—

बैठना छाया में चाहे कैर हो,  
रहना भाइयो में चाहे बैर हो।  
चलना रास्ते से चाहे फेर हो,  
खाना माँ से चाहे जैर हो ॥”

अधिक तो क्या संक्षेप में यही कहना है कि माँ के लिए विचारों



एवं व्यवहारों में परिवर्तन लाना होगा। यह सब काम करें इससे पूर्व माँ से विनय करना अपरिहार्य है। विनय से जीवन रूपी स्वर्ण के संग लगे हुए अभिमान, क्रोध, लोभ, मोह और माया आदि जो घृणित प्रवृत्तियाँ हैं उन सभी के कणों को तपाकर निकाल देना है और जीवन रूपी सोने को शुद्ध व चमकीला बना देना है। जिसके द्वारा सद्गुण रूपी आभूषण निर्मित किये जाते हैं। यह तो यथार्थ है कि जब तक स्वर्ण नरम नहीं होगा तब तक उसमें नग नहीं जड़ा जा



सकता। सद्गुणों के नग जड़ने हेतु जीवन रूपी सोने को नरम करना होगा। नम्रता ही वास्तविक आभूषण है। विनयशीलता होनी चाहिए उसी से विद्या का प्रादुर्भाव होगा।

माँ—व्यवहार। आर्थिक स्थिति की जिस प्रकार से मानव समालोचना करता है उसी प्रकार माँ के प्रति हमारा क्या व्यवहार है उसकी भी समालोचना करनी चाहिए। प्रत्येक जन को मनन करना चाहिए कि मेरा माँ से कैसा व्यवहार होना चाहिए और वर्तमान में कैसा है? उसमें जो त्रुटि है उसे दूर करने का उपाय क्या है? यदि इस न्यूनता को दूर नहीं किया गया तो इसका परिणाम क्या होगा? इस प्रकार माँ से अच्छा व्यवहार करने की समीक्षा करने पर आपको अच्छे बुरे का स्पष्ट पता लग जायेगा। सही चित्र आपके सामने उपस्थित होगा। समझना आपकी तीक्ष्ण बुद्धि का कार्य है।

नारंगी और खरबूजा इन दोनों को आप खाते हैं। खरबूजे के बाह्य पर तो फांकें दिखती हैं, पर काटने पर भीतर से सम्पूर्ण एक होता है और नारंगी बिल्कुल विपरीत होती है। हमें नारंगी नहीं खरबूजे सदृश उत्तम व्यवहार बनाना चाहिए।

अभी तक क्योंकि आपने माँ को जाना नहीं, समझा नहीं, केवल दुनिया की चिन्ता,की उसी की सार संभाल की। कभी माँ से व्यवहार पर भी विचार किया ? विचार ही नहीं करेंगे तो पायेंगे कहां से...। श्रीमद् राजचन्द्र जी ने कहा—“कर विचार तो पाय।” पाने की की योग्यता है तो अधिकार भी और साथ में तथैव संयोग भी। पर .....विषम समस्या.....जटिल बाधकता ! जिसे आप स्वयं अच्छी तरह जानते हैं क्योंकि वह आपके हृदय की बात है। यदि मैं लिख दूँगा तो आपके मन में हलचल उत्पन्न हो जायेगी।

हलचल ही तो करना है तभी तो आपकी तुच्छ भावनाएँ बदलेंगी वैसे भी प्राप्त मुझे लेखनी के पैसे थोड़े ही दे रहे हैं। लेखनी मेरे पास है तो थोड़ा और विचार कर कागज-कलम युद्ध करले। अब यदि हम इतने तक ही सोमित रह जायेंगे कि यह माँ है और मैं पुत्र तो कुछ भी नहीं। सही परिचय सामीप्य से ही होगा, और उस परिचय से विश्वास पैदा होगा। तुलसीदास ने लिखा है—

“जाने बिन होय न प्रतीति, बिनु प्रतीति होय नहीं प्रीति।”

लेकिन तनाव आपने ऐसा उत्पन्न कर लिया कि सब कुछ बिगड़ गया। ध्यान रहे यदि माँ से सम्बन्ध बिगड़ गये तो रंग बिगड़ गया। ऐसा होने का क्या कारण है ?

मूलभूत कारण यही है कि माँ ने हमें जितने भी अच्छे संस्कार प्रदान किए थे वर्तमान शिक्षा ने ऐसा प्रभाव डाला कि सारे संस्कारों की खिचड़ी बन गई। वर्तमान शिक्षा में सदाचार के बदले में बालक के मुखारविन्द से वचनामृत स्वरूप फिल्मी गाने और उनकी खोपड़ी

में हर वक्त अभिनेता और अभिनेत्रियों के नाम भरे पड़े रहते हैं। एक दिन में इस क्षेत्र में ३५ करोड़ रुपये स्वाहा होते हैं। ब्रह्मचर्य का तो दिवाला ही निकल गया है। प्रत्येक विद्यालय चाहे वह उच्च हो या उच्चतर सभी में लैला-मजनुओं का टोला अवश्य होगा। और गुन्डा-गर्दी भी। सुना जाता है कि संसार में एक मिनट में तीन हजार गुण्डे बनते हैं।

चलचित्रों की तो ऐसी छाप बनी है कि क्या बताऊँ? इसके कारण वे अपनी माँ को गली की कुतिया समझने लगे हैं। इनमें इतना कुसंस्कार आया है कि लगभग सारा विश्व घिर चुका है, डुबकियाँ लगा रहा हैं। बस ! मात्र यमराज तक पहुंचना बाकी है। समय के बहाव में गिरकर हर एक पदार्थ में कुछ न कुछ परिवर्तन आ ही गया है। सभ्यता के आदिम चरण में स्त्री-पुरुष स्वयं की शर्म के निवारणार्थ पेड़ों के पत्तों और छाल तथा जानवरों की खाल का भी उपयोग करते थे। धीरे-धीरे सभ्यता के विकास-काल में उन्होंने कपड़ों का पहनाव सीखा जो मूलतः शरीर को ढकने के लिए पहना जाता था किन्तु आज स्थिति बिल्कुल परिवर्तित हो गई है। पाश्चात्य जगत् का अन्धानुकरण और फैशन का संक्रामक रोग प्रमुखतः नवयुवक और नवयुवतियों में ही अधिक है। कालिजों की कुछ लड़के-लड़कियाँ विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में छपे चित्रों या सिनेमा जगत् के अभिनेता और अभिनेत्रियों के परिधान का अति बारीकी से अध्ययन करके वैसी ही वेश-भूषा तैयार करके और पहनकर सम-वयस्कों के प्रशंसा के पात्र बनते हैं।

स्वयं का अंग प्रदर्शित करना तो बाढ की प्रमुख नदी है। भारतीय संस्कृति का अभ्युदय कराने वाली नवयौवनाओं के आज ब्लाउज के नाम पर एक ऐसा वस्त्र-खण्ड मात्र दृष्टिगत किया जा सकता है। जिसमें से उनकी पीठ, सीना, उदर आदि अंग निर्वस्त्र होते हैं। और साड़ी का बन्धन भी ऐसा कि उनके मटकते कूल्हे, त्रिवली और नाभि स्पष्ट दृष्टिगोचर होती रहती हैं। कवि बिहारी की “त्रिवली नाभि

दिखाइ कै, सिर ढकि सकुलि समाहि”, वाली उस क्रिया-विदग्धा नायिका का आज नाम मात्र भी महत्व नहीं रहा है क्योंकि आजकल तो स्वयं ही इन अंगों का प्रदर्शन एक साधारण बात है। नागिन की तरह काली और लम्बी वेणियों का युग अपभ्रंश हो गया है और बाव्ड हेयर से लेकर विभिन्न प्रकार की आकृतियों वाले घोंसला, बुर्ज आदि न जाने क्या-क्या कह कर पुकारा जाता है, ऐसे जूड़े फैशन की भी बाढ़ आ रही है। यह समय सुदूर नहीं कि जूड़े सर से चार-छः गुने बड़े तक बनने लगेंगे। फैशनों को अपनाते में नवयुवति वर्ग से नवयुवक-वर्ग पीछे नहीं है। मर्दानगी का चिन्ह समझे जाने वाली मूँछें अब तो आपको अंगुलियों पर गणना करने जितनी ही मिलेंगी। इनके चेहरे पर यदि विधाता ने ऊबड़-खाबड़-कंटीली झाड़ी लगाकर बदसूरत बनाने का अत्याचार किया तो क्या हुआ, नवयुवक दाढ़ी-मूँछों को सफाचट करके और पाउडर-क्रीम लगाकर पूर्णरूपेण लड़कियों के समान सूरत बनाने का सुप्रयत्न करते हैं। हिन्दुत्व की पहचान कराने वाली चोटी इनके माथे से ऐसे गायब होती जा रही है जैसे गधे के सिर से सींग। प्राचीन जमाने के केश-विन्यास को तो अब ‘मिलट्री कट’ कहकर ‘आउट आफ डेट’ कहा जाता है। पच्चीस और उनतीस इंच की मोहरी वाली पैट का परित्याग करके बारह-तेरह इंच की मुहरी वाली पैटें पहनकर सीढ़ियों पर चढ़ते अथवा बस में सवार होते समय बड़ी कठिनाई का सामना करते हैं या पैट फट जाने पर उपहास के द्वारा प्रशंसा के उत्तम पात्र बनते हैं।

यह आधुनिक युग है जिसमें हम अपना सर्वस्व विदेशी आंखों से देखते हैं। हम प्रत्येक बात का परीक्षण पाश्चात्य संस्कृति के मानदण्डों से करते हैं। अब आज अपने आपको, अपनी संस्कृति तथा सभ्यता को विस्मृत कर स्वतन्त्रता के उत्सव मनाये जा रहे हैं। इस उत्सव पर

हम अपने युग तथा अपनी मान्यताओं को भूल चुके हैं। हम जमाने की नकल कर आगे बढ़ रहे हैं।

अतः यथार्थ को ढूँढिये। अपनी नीयत क्यों बिगाड़ते हो? यथार्थ को समझो। प्राचीन जंगली जानवर भी मत बनो और आधुनिकता की टोपी भी मत पहनो। प्राचीन सभी बुरा है या नवीन सभी अच्छा है ऐसा नहीं है। दोनों का समन्वय करना सीखें। कर्त्तव्य को समझो जिस इन्सान को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं वह जीवित होते हुए भी पृथ्वी पर मृतक के समान है।

यद्यपि गन्ने को हाथ में लेंगे पर उसमें से रस तब तक नहीं निकलेगा जब तक मुँह से चूसेंगे नहीं। घुँघरू पांव में पहनेंगे पर राग तभी निकलेगा जब पैर ठुमकायेंगे। फूलों का गुच्छा हाथ में लेंगे पर नाक के समीप नहीं ले जायेंगे तब तक सुगन्ध नहीं आयेगी। हमने मानव आकृति तो पाई पर मानव प्रकृति नहीं पायेंगे तो आकृति भी धन्य-धन्य नहीं होगी। हम बच्चों पर अनुशासन करें लेकिन स्वयं अनुशासित रहकर। हमारा आचरण ही दूसरों को कुछ सिखा सकता है।

आप में परिवर्तन होगा तभी आप दूसरे में परिवर्तन लाने में सफल हो सकेंगे। आप यदि अपने बच्चों से अपनी सेवा करवाना चाहते हैं तो आप भी माँ की सेवा करो। आप करेंगे तभी आपके बच्चे आपकी करेंगे। दूसरों को बदलने से पूर्व स्वयं को बदलना होगा। कुछ पाने के लिए खुद दीपक बनकर जलना होगा। निद्रा-धीन मत होइये। जागो, उठो। जीवन लोहा जैसा बन गया, पारस स्पर्श करदो। इसके संग से लोहा भी सोना बन जायेगा। अतः—

“उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है।

जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है।”

मैंने देखा, समझा और अनुभव किया है कि प्रत्येक की यह

शिकायत रहती है कि कार्य तो बहुत करने हैं पर समयाभाव है। कई काम जो महत्वपूर्ण होते हुए भी समयाभाव के कारण नहीं कर पाते। प्रमाद से कई बार हम महत्वपूर्ण लाभों से वंचित रह जाते हैं। यद्यपि व्यक्ति अपने किसी न किसी कार्य में लगा ही रहता है चाहे वह आवश्यक हो अथवा अनावश्यक। अतः ध्यान रखी—

“जिन्दगी जब तक रहेगी, फुरसत न होगी काम से।

कुछ समय ऐसा निकालो, प्रेम करलो माँ से ॥”

क्योंकि “प्रेम वसन्त समीर है, द्वेष ग्रीष्म की लू।” (प्रेमचन्द, सेवासदन)

किसी ने “प्रेम इस लोक का अमृत है” कहा, तो सुदर्शन ने “प्रेम स्वर्गीय शक्ति का जादू है, इसमें पड़कर राक्षस भी देवता बन जाता है” आदि कहा था। यदि अंग्रेज लेखक स्वेटमार्टन ने “प्रेम ही असन्तोष रूपी महान व्याधि की रामबाण औषधि है। प्रेम ही द्वेष ईर्ष्या आदि दुर्गुणों का उपशामक है” आदि कहा तो जाने पहचाने जर्मन महाकवि जे० डब्लू० वी० गेटे ने “प्रेम में स्वर्गीय आनन्द और मृत्यु की सी यंत्रणा है किन्तु जो करता है वही सुखी और भाग्यवान है” इत्यादि कहा। हिन्दी के शीर्षस्थ उपन्यास-शिल्पी प्रेमचन्द ने “प्रेम सात्विक करो। प्रेम और वासना में उतना ही अंतर है जितना कंचन और कांच में।” और “सच्चा प्रेम सेवा से प्रकट होता है”। यह महात्मा गांधी आदि ने कहा।

पर आजकल व्यक्ति थोड़ा भी पढ लिख लेता है तो वह स्वयं को बलुर और योग्य समझने लगता है। इस अहंकार के मारे जब माँ को हीन समझता है तब औरों की तो बात ही क्या ?

वह विस्मृत कर बैठता है अहंकार मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है।

“क्रोधो मूलम् अनर्थानाम्।” “Pride goes before and shame follows after.”

अंग्रेजी की इस कहावत में भी यही कहा जाता है—पहले गर्व चलता है, उसके बाद कलंक आता है। और इसके विपरीत—

“समणस्स जणस्स पिओ णरो,

अमाणी सद्रा हवदि लोए।

णाणं जसं च अर्थं,  
लभदि सकज्जं च साहेदि  
(—भगवती आराधना, १३७६)

अभिमान रहित मनुष्य जन और स्वजन सभी को प्रिय लगता है। वह ज्ञान, यश और सम्पत्ति प्राप्त करता है तथा वह प्रत्येक कार्य को सिद्ध कर सकता है। “विद्या स्तब्धस्य निष्फला” यह ‘गीता’ की उक्ति है कि दुराग्रही और अभिमानीकी विद्या सर्वथा फलहीन हो जाती है। इसी कारण और तो और आजकल प्रायः यह देखने में आता है कि माँ किसी को पसन्द ही नहीं। यदि पसन्द है तो पत्नी। चाहे वह अपनी हो या पराई। जिसे केवल वासना की पुतली समझते हैं। वह यह नहीं जानते कि यह किसी की माँ है या बेटी अथवा बहन। वह बंधना चाहती है प्रेम के बन्धन में, जबकि आप उसे वासना की बेड़ियों में बांध रहे हैं। धिक्कार है ऐसे मानव के जीवन को। आप हवा के रुख को पहचानो। आप इस पर प्रहार करके सुख चाहते हैं परन्तु यह सुख का उपाय नहीं उसके जीवन को लूटने का प्रयास मत करो। यह सब आपको कटु वचन लगते हैं पर मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। क्योंकि—

“चट्टानें हिल नहीं सकती कभी आंधी के खतरों से।

शोले बुझ नहीं सकते कभी शबनम की कतारों से ॥”

अब माँ से प्रेम का नाता जोड़ लो, उसके अधिकार को पहचानो उसके दुख दर्द को समझो। मानलें कि आप समय की दीवार और सद्ज्ञान की हरधारा को बदल देंगे, परन्तु दिल केवल प्रेम से ही परिवर्तन किया जा सकेगा। उससे नफरत नहीं प्रेम करो। नफरत हृदय का पागलपन है। अंग्रेज कवि लार्ड बायरन ने कहा है—  
“Hatred is the madness of the heart” और “नफरत से नफरत समाप्त नहीं होगी उसका अन्त होगा तो सिर्फ प्रेम से। यह सदा से उसका स्वभाव रहा है।” —(गौतम बुद्ध, बौद्ध धर्म के संस्थापक)

मैं आपको वही बता रहा हूँ जिसकों मैंने स्वयं सुना है, देखा है कि आज के युग में माँ से तो प्रेम है ही नहीं बल्कि साथ ही मातृभूमि से भी घृणा है। प्रत्येक व्यक्ति स्वदेश छोड़कर विदेश गमन करना चाहता है। जन्म होते ही विदेशीभाषा अंग्रेजी से शादी की अभिलाषा होती है। परन्तु उनको यह मालूम नहीं है जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा है कि—मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के समान है। जो मातृभाषा का अपमान करता है वह स्वदेशभक्त कहलाने योग्य नहीं है। हमारी भाषा हमारा अपना प्रतिबिम्ब है। विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने की पद्धति से अपार हानि होती है।……देशी भाषा का अनादर राष्ट्रीय आत्म-हत्या है।……परायी भाषा के साहित्य से ही आनन्द लूटने की चोर आदत जैसी है।……जिस भाषा में बहादुर सच्चे और दया वगैरह के लक्षण नहीं होते, उस भाषा के बोलने वाले बहादुर, सच्चे और दयावान नहीं होते।……माँ के दूध के साथ जो संस्कार मिलते हैं और जो मीठे शब्द सुनाई देते हैं, उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए वह विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा लेने से टूट जाता है। जिसे तोड़ने का हेतु पवित्र हो तो भी वे जनता के दुश्मन हैं।

डा० जानसन की मान्यता है कि “भाषा विचार की पोशाक है।” “जब भाषा का शरीर दुरस्त, उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाड़ियाँ तैयार हो जाती हैं, नसों में रक्त का प्रवाह और हृदय में जीवन स्पन्द पैदा हो जाता है तब वह जीवन यौवन के पुष्प-पत्र संकुल बसन्त में नवीन कल्पनाएँ करता हुआ नयी-नयी सृष्टि करता है।”

(—सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’)

मातृ भाषा में माँ की ममता और जन्मभूमि का प्यार है। जब हम उसका प्रयोग करते हैं तो ऐसा लगता है जैसे हमारा बचपन वापस मिल गया हो। वेद-मंत्र तो आपने सुना ही होगा—



“इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्भयोभुवः । बहिः सीदन्त्वा  
सिधः ।”

मातृभाषा, मातृसभ्यता और मातृभूमि तीनों सुखकारिणी स्थिर  
रूप देवियाँ हमारे हृदयासन पर विराजती रहें तो अति उत्तम है ।

प्रश्न उठता है तो फिर हमारा हर क्षण माँ हेतु व्यतीत होना  
चाहिए क्या यही तात्पर्य है ? “नहीं ।” मनुष्य की प्रवृत्तियाँ हरपल  
परिवर्तित होती रहती है । कोई इन्सान खड़ा ही खड़ा नहीं रह  
सकता, कुछ समय बाद बैठने की अपरिहार्यता हो जाती है । थोड़ा  
समय खेल कूद में बिताता है तो थोड़ा बातचीत में । इस तरह मन-  
वचन और कर्म का उपयोग विविध प्रकार से होता रहता है । इसमें  
से कुछ समय माँ के लिए निकालना है । जैसे—एक किसान ने अपना  
नियम बना रखा था कि कमाईका पहला हिस्सा स्वयं के एवं पत्नी के  
लिए, दूसरा बच्चों के लिए, तीसरा माँ की सेवा हेतु, चौथा व्यापार  
या खेती और उन्नति में लगाना । सप्ताह में ६ दिन काम करके  
अपने बच्चे हुए अन्य प्रकार के काम रविवार के अवकाश के दिन पूरे  
कर सके । जिस प्रकार कार्य करने के बाद अवकाश होता है घर के  
लिए । यही बात माँ हेतु भी समझनी चाहिए इसमें संकोच न करें  
वरना हम खेल कूद में ही सारा समय व्यतीत कर देंगे । विधि की  
विडम्बना यही है कि हरेक व्यक्ति आजकल संकोच करता है । अपने  
पैसे मांगने में, उठते-बैठते, खाने पीने में संकोच करते हैं । यहाँ तक  
कि सभा के मंत्री सभा का कार्य-विवरण को वाचन करने में भी संकोच  
करते हैं । पर माँ से दुर्व्यवहार करते, निन्दक व कपूत पद की माला  
से शोभित होते हुए व्यक्ति संकोच नहीं करता है ।

गलतफहमी आपके मन की विषम समस्या है । पुत्र-पुत्री के मन में  
जो भाव होता है कहते हुए शर्म आती है, संकाच होता है क्योंकि  
उनके अन्तर के भावों को किसी को बताना हर एक व्यक्ति के साहस  
की बात नहीं । अच्छाई तो हर व्यक्ति बता सकता है परन्तु बुराई

कोई बिरला ही ।

न्यायाधीश के सामने पुत्र अपनी सफाई पेश करता है कि मेरी आयु पच्चीस वर्ष की और माँ की चालीस वर्ष के निकट माँ अपराधी है, कारण इन्होंने अभी तक मेरा विवाह नहीं किया । पुत्राधिकार नहीं दिया । मेरा जो उत्तरदायित्व है, सत्ता व सम्पत्ति के अधिकार का जो सुख है, इस यौवनावस्था में नहीं भोगूंगा तो क्या वृद्धावस्था में भोगूंगा ? यदि माँ की मृत्यु हुई १०० वर्ष की आयु में तो क्या मैं मानव जन्म पाकर कुंवारा बाप ही रहूंगा ! मेरे तो मन में आया था कि कल इसकी हत्या कर दूँ ।

पुत्री का कथन है कि मेरी उम्र बीस वर्ष हो गयी अभी तक कोई अच्छा वर माँ ने तलास करनेका प्रयत्न नहीं किया जबकि स्वयं पन्द्रह वर्ष की आयुमें ही वधू बन गयी थी। तो मुझे ऐसा लगने लगा है कि मैं इस घर में ही प्रौढ़त्व को प्राप्त हो जाऊँगी । यदि तीस-चालीस वर्ष इसी घर में व्यतीत हो गए तो मेरा आगे का क्या भविष्य होगा ! मुझे तो अब स्वयं ही निर्णय लेना होगा और निर्णय लेने से पूर्व इस घर का परित्याग कर देना है ।

न्यायाधीश के सामने ही माँ कहने लगी—बेटा ! मैं तुम्हारी बातें सुन-सुनकर आश्चर्य चकित हूँ । बेटा ! तुमने ऐसा विचार किया । मैं तो सोचती थी कि मैं जब तक जीवित हूँ तब तक पुत्र पर क्यों भार डालूँ । जब अभी से तुम पर भार आजायेगा तो तुम जीवन को गुलाब-पुष्प की भाँति सुगन्धित नहीं बना पाओगे ।

बेटी ! तेरे मन में भी ऐसा विचार आ गया ? मैं तो ऐसी सोचती थी कि एक ही लाड़ली बेटी है । ससुराल जाने के बाद तो बुलाना मेरे हाथ में नहीं है । यहाँ जितना लाड़-प्यार मिल जाये, उतना ससुराल में मिलना मुश्किल है । माँ की जरूरत सास पूर्ण करदे, ऐसी सासें होती हैं, पर प्रत्येक ऐसी हो ऐसा होना असंभव है ।

सास तो हजारों मिलेंगी किन्तु बहू की बुराईयों को बेटी क

तरह समझा दे ऐसा कठिन है। मैंने तो सोचा था जितना लाड़-प्यार आनन्द खुशी दे सकूँ उतना दूँ। मेरी तू आँखों की पुतली है, मन की दुलारी है। जितना समय घर में मेरे साथ व्यतीत हो जाए, उतना अच्छा है, बाद में न जाने कब मिलना होगा। अब तो मैं आज ही तुम दोनों का कार्य पूर्ण करवा, निवृत्त हो जाऊँगी।

ऐसे कार्य की पूर्ति में परिस्थितियाँ भी मेरे बाधक नहीं हैं। वर्तमान में कहीं रूप बाधक हो जाता है तो कहीं पैसा तो कहीं शिक्षा बाधक हो जाती है। जबकि सत्य है कि समाज की लड़की समाज में ही जायेगी, जाति-व्यवस्था में ही हमारे सम्बन्ध स्थापित होने हैं, फिर भी छटाई और इसके पीछे लोभवृत्ति न जाने क्या-क्या करवा रही है। परन्तु मेरे सामने तो तुम दोनों के लिए ऐसी कोई बाधा नहीं है।

सोचने-सोचने में कितना बड़ा अन्तर आ गया, माँ के विचार क्या हैं और पुत्र-पुत्री के क्या हैं ?

प्रिय ! अविरल गतिमान संसार में अनादिकालीन जन्म-मरण के चक्र से कोई भी नहीं बच पाया है। “ऊगे सो तो आथ में, फूले सो कुम्हलाय, जन्मे सो निश्चय मरे, कौन अमर हो आय।” अतः माँ के उपकारों का मूल्य समझते हुए प्राप्त अमूल्य क्षणों का सदुपयोग उनकी सेवा में लगाने का प्रयास करो। न जाने मृत्यु किस क्षण आ घरे। आता है वह जाता है, यह तो परम्परा का रहा हुआ क्रम है। आना और जाना यह कोई महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है आने और जाने के मध्य में स्थिर रहने वाले समय से उठाया गया लाभ। तीर्थंकर महावीर की वाणी सावधान कर रही है कि कुश के अग्रभाग पर स्थिति ओस बिन्दु के सदृश यह जीवन है। उत्तराध्ययन सूत्र में गाथा है—

“दुमपतए पंडुडयए जद्धा निवडइ राइगणाण अचवए ।  
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥”

रात्रियों के व्यतीत होने पर वृक्ष का पत्ता पीला होकर जैसे गिर जाता है, वैसे ही मानव जीवन है। अतएव क्षण मात्र प्रमाद मत करो।

पल-पल आयुष्य अल्प होता जा रहा है, श्वासों की डोर छोटी होती जा रही है। पुण्य कर्मों से प्राप्त यह मानव जीवन व्यतीत होता जा रहा है, इसके व्यतीत होने से पूर्व माँ के उपकारों का बदला चुकाकर सदुपयोग करना है। यह मानव-जीवन पानी के बुलबुले के समान अस्थिर हैं, क्षणभंगुर है। जल में वायु के स्पर्श से बुलबुले उत्पन्न होते हैं, मिट जाते हैं। मनुष्य पैदा होता है कुछ दिन संसार में रहकर गंगाजी के घाट चला जाता है। प्रभात होने पर अन्धकार रात्रि में जगमगाते तारागण कान्तिविहीन हो जाते हैं, वैसे ही मृत्यु के कारण मानव-जीवन का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। जल की तरंग आती है चली जाती है, उसी प्रकार क्षण-क्षण करके हमारा जीवन समाप्त होता जाता है। भर्तृहरि ने अपने एक श्लोक में आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा है—

“व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ति ।

रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ॥

आयुः परिस्रवति ऽन्न घटादिवाम्भो ।

लोकस्तथाऽप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥”

वृद्धावस्था भयंकर बाधिन की भांति सामने खड़ी है, रोग शत्रुओं की भांति आक्रमण कर रहे हैं, आयु जिस प्रकार फूटे हुए घड़े में से एक-एक बूंद पानी टपकता है उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी क्षण-क्षण में समाप्त होता चला जाता है, पर आश्चर्यकी बात है कि लोग फिर वही काम करते हैं जिससे उनका अनिष्ट हो। अतः—“नर कर उस दिन की तुम याद, जिस दिन तेरी चल-चल-चल होगी।” इस भाव को ध्यान में रखकर माँ के उपकारों का ऋण चुकाने का प्रयास करो। कष्ट हो तो हँसते-हँसते सहन कर लो। सफर लम्बा है अवश्य, पर मंजिल पास

ही है, विश्वास को सूखने मत दो। भले समुद्र सूख जाये पर प्यास मत सूखने दो। उपकारों का बदला चुकाओ, बगावत मत करो। सितारों से बगावत की तो अम्बर का क्या होगा? लहरों ने बगावत की तो समुद्र का क्या होगा? बेटे ने बगावत की तो बेचारी माँ का क्या होगा? क्या इस बात पर कभी अल्पांश भी चिन्तन किया?

आज के व्यक्तियों को माँ के प्रति पुत्र-पुत्री का क्या कर्त्तव्य है उनको समझाने का प्रयास करते हैं तो उत्तर मिलता है कि अभी काफी उम्र अबशेष है, फिर कर लेंगे। पर मैं पूछता हूँ कि मनुष्य को समय मिलता ही कब है और कितना है।

“आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदद्धं गतं,  
तस्यार्धस्य परस्य चद्धर्मपरं बालत्व वृद्धत्वयोः।

शेषं व्याधि-बियोग दुःख सहितं सेवादिभिर्नीयते,

जीवे वारितरंगं चंचलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् (भर्तृहरि)

मधुकर की घ्राणेन्द्रिय अति तीव्र होती है, इसी कारण कमल-पुष्प की सुगन्ध से आकृष्ट होकर वह पुष्प पर जा बैठता है किन्तु उसकी महक में मस्त होकर वह विस्मृत कर देता है कि संध्या हो रही है और दिवाकरास्त के साथ ही अरविन्द फूल के पूट संकुचित होकर बन्द हो जायेंगे। ऐसा हो भी जाता है कि भंवरा कमल के संकुचित होते ही कैदी बन जाता है। वह विचार करता है—

“रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,

भास्वान् उदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः।

एवं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,

हा हन्त ! हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार ॥

घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत होकर पंकज-पुष्प में कैद हो जाने वाला भ्रमर सोचता है—रात्रि व्यतीत हो जायेगी, प्रभात होगा, भानु के उदित होने पर उस समय जैसे ही कमल खिलेगा मैं आनन्द से बाह्य वातावरण में उड़ जाऊँगा।

परन्तु विडम्बना यह है कि सूर्योदय से पूर्व ही गज का आगमन होता है वह और सरोवर में स्थित कमल-नाल को अपनी सूँड से उखाड़ लेता है। इस प्रकार न कमल खिल सकता है और न ही कैंदी भ्रमर उसमें बच पाता है।

अधिक से अधिक आजकल मानव की आयु औसतन सौ वर्ष की होती होगी। यदि हम उम्र की यह मान्यता स्वीकार कर लें तो हिसाब से आधे अर्थात् पचास वर्ष तो रात्रि को सोने में बीत जाते हैं। शेष रहे पचास इसमें से साढ़े बारह वर्ष बचपन के तथा साढ़े बारह प्रौढ़ावस्था के व्यर्थ व्यतीत हो जाते हैं क्योंकि बाल्यकाल में बालक माँ के महत्व को नहीं समझता, उसके स्वरूप से अनभिज्ञ रहता है और वृद्धावस्था का आगमन होने तक या तो माँ का स्वर्ग-वास हो जाता है। यदि नहीं भी हुआ तो सब कुछ जानते हुए भी अशक्ति के कारण मानव अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकता। अब आयु बची पच्चीस वर्ष। इन वर्षोंमें भी व्यक्ति माँ हेतु कुछ करता है? नहीं। यौवनावस्था में वह नारी को मात्र वासना की पूर्ति का हेतु समझता है। वासना का भूत ऐसा सवार होता है कि वह बिल्कुल अन्धा हो जाता है और इनसे समय बचा तो 'शरीरम् व्याधि मंदिरम्'। आधि, व्याधि या उपाधियो से जूझता रहता है और परिणाम—

“बचपन सुबह का, और दोपहरी समझो जवानी।

सांझ ज्यूँ ढलता जर्जर बुढापा, रात को खतम तेरी कहानी ॥

औसवत् क्षण-क्षण जीवन बीतता चला जाता है फिर बताइये कि मानव अपने जीवन से क्या लाभ उठाता है। माँ ने आपके प्रति जो उपकार किये हैं आप उनसे कब ऋण मुक्त होंगे। आपको अपने कर्त्तव्य का पालन करना होगा। यदि नहीं तो शरीर क्षणभंगुर है जो देखते देखते नष्ट होकर खाक में मिल जायेगा। अतः कर्त्तव्य के प्रति

सजग होकर उसका सच्चाई और ईमानदारी से पालन कीजिए ।  
और स्व लक्ष्य को प्राप्त कीजिए । क्योंकि आप—

माता तन का सार, पिता का तू सर्वस है,  
दोनों का संसार, वंश का विस्तृत यश हैं ।  
माता-पितानुराग, प्रकट यह तेरा तन है,  
मूर्तिमान सौभाग्य, पुत्र तू अद्भुत धन हैं ।  
जब तू जग में आय, भूमि पर गिर कर रोया,  
माँ ने हिये लगाय, कष्ट सब अपना खोया ।

—कामता प्रसाद गुरु

प्रसिद्ध हिन्दी लेखक व कवि कामता प्रसाद गुरु का उपर्युक्त पद्य एक युवक के हृदयंगम हो गया । इस युवक की घटना हमारे लिए नैतिकता की नूतन प्रकाशशिखा है । नीचे लिखी घटना से उसका सपूतपन भली भाँति प्रकट हो जाता है ।

माँयें अनेक जनती जग में सुतों को,  
है किन्तु वे न तुझसे सूत की प्रसूता ।  
सारी दिशा धर नहीं रवि का उजाला,  
पै एक पूरव दिशा रवि को उगाती ॥

वह युवक माँ का एक ही पुत्र था । परन्तु था सपूत ! अपनी माँ की आज्ञा वह सदा मानता था । माँ की सेवा करना और उसे सुख पहुंचाने का काम करना उसे अच्छा लगता था । माता की सेवा करने में अपने को कुछ कष्ट होता तो उस कष्ट को भी वह बड़ी प्रसन्नता से सह लिया करता था ।

एक समय उस युवककी माँ बीमार पड़ी । युवक सब प्रकार से माँ की सेवा में जुट गया । जब वह दूकान चला जाता तब बहू सास की सेवा करती ।

एक दिन दूकान बन्द करके युवक घर को आया । रात के प्रायः

६ बजे होंगे। सोने से पूर्व नियमानुसार माँ के चरणों में नमस्कार करने गया। माँ ने पुत्र से कहा—‘बेटा ! मुझे प्यास लगी है। पानी ले आओ।’

युवक झटपट पानी का ग्लास लेकर माता के पास पहुंचा, लेकिन उसने आते ही देखा कि माँ को नींद आ गई है। युवक ने माँ को नींद में जगाना उचित न समझा। वह पानी का ग्लास लिए पास ही माँ के सिरहाने खड़ा हो गया। माँ के जागने की वह राह देख रहा था। लेकिन उसे पूरी रात इसी प्रकार खड़े रहना पड़ा। उसकी बीमार माँ को अच्छी नींद आई थी। रात में फिर वह जगी ही नहीं।



सवेरे जब उसकी माँ जगी तो उसने देखा कि उसका पुत्र पानी लिये उसके सिरहाने चुपचाप खड़ा है। माँ की आंखों में प्रेम से आंसू भर आये। उसने कहा—‘बेटा ! तू रात भर ग्लास का वजन लेकर क्यों खड़ा रहा?’

युवक ने कहा—‘माँ ! मैंने तो सिर्फ नौ घण्टे तक ही इस ग्लास का वजन उठाया है, किन्तु तूने तो नौ महीने तक शरीर का बोझ उठाया था और तू मेरे लिए सैकड़ों बार रात-रात भर जगी है। फिर मैं यदि तेरे लिए एक रात भी जग गया तो क्या हुआ ! तेरी उस महान् तकलीफ के सामने मेरी तकलीफ है ही कितनी सी ?

जिस घर में ऐसे सपूत रहते हों, उसमें सदा सुख-शांति रहेगी—इसमें कोई शक नहीं।

माँ का पुत्र पर कितना उपकार है, इस बात को जब पुत्र समझ



लेता है तब पुत्र, पुत्र नहीं सुपुत्र बन जाता है। वैसे भी आचार-मर्यादा को त्वरया आत्मसात् करने में नारी-माता का वर्ग अग्रगण्य है। माँ अपनी कृपा, कोमलता प्रभृति गुणों के कारण सातवें नरक में नहीं जाती। प्राचीन-अर्वाचीन शताब्दी में माँ द्वारा सम्पन्न होने वाली समाज-सेवा अपना विशेष स्थान रखती है। वह शक्ति और प्रतिभा के विकास से हमसे किसी प्रकार से भी न्यून नहीं है। स्वतन्त्रता-संग्राम एवं आज के शासन-तन्त्र में माँ का योगदान इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। वह भी अभूतपूर्व, जाज्वल्यमान और प्रशस्त है।

यदि आप युवक हैं अथवा बालक हैं तो आप यह कभी अहंकार मत करना कि हम स्त्री-वर्ग अथवा बालिका-वर्ग से आगे हैं। क्योंकि “कुर्वन् मदं पुनस्तानि, हीनानि लभते जनः” (योगशास्त्र) बालक की अपेक्षा बालिका अधिक संवेदनशील, भावुक, समझदार एवं ग्राह्यशक्ति धारण करने वाली होती है उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द ने “कायाकल्प” में लिखा है कि—“बालिका का हृदय कितना सरल, कितना उदार, कितना कोमल और कितना भावमय होता है।” और “बालक शिक्षित होने से केवल अपना ही भला करेगा, किन्तु बालिका पूरे परिवार का भला करेगी।”—यह वाक्य महान् राजनीतिज्ञ, यशस्वी लेखक और प्रधान् मन्त्री जवाहरलाल नेहरू के हैं। इसी कारण अपने उत्तम संस्कारों और विचारों को प्राण जाने पर भी बालिका नहीं छोड़ती। यही कारण है कि वे सफल पुत्री, सफल पत्नी और अन्त में सफल माँ सिद्ध होती है। और उसके कारण ही घर स्वर्ग बनता है।

यह माँ सन्तान से कुछ भी नहीं लेती, जीवन भर देती ही रहती हैं। जिसने केवल बलिदान ही बलिदान दिया, अपने जीवन को हम पर न्यौछावर कर दिया, उसकी सेवा-सुश्रुषा करना हमारा ही कर्तव्य नहीं, बल्कि सभी का धर्म बनता है। “मनुष्य उतना ही महान होगा जितना वह अपनी आत्मा में सत्य, त्याग, दया, प्रेम और शक्ति का विकास करेगा”—स्वेटमार्डन (दिव्य जीवन)

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम ने कैंकेयी माँ के प्रति कहा था—

“नत्ह्यतो धर्मचरणं, किञ्चिदस्ति महत्तरम् ।  
यथा पितरि शुश्रूषा, वस्य वा वचन क्रिया ॥  
(वाल्मीकि रामायण)



पिता की सेवा करना और उनकी आज्ञा का पालन करना इससे बड़ा कोई धर्माचरण नहीं है। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के अयोध्याकाण्ड में यह भी लिखा है—



“न सत्यं दानमानो वा न यज्ञाश्चाप्तदक्षिणाः ।  
तथा बलकराः सीते ! यथा सेवा पितुर्हिता ॥

हे सीता ! पिता की सेवा करना जिस प्रकार कल्याणकारी माना गया है वैसा प्रबल साधन न सत्य है न दान और न सम्मान और न प्रचुर दक्षिणा वाले यज्ञ ही हैं ।

यही सामग्री माँ-हेतु भी अवतरित है। जब पिता के आदेश व सेवा को इतनी महत्ता दी जाती है तो फिर माँ की महत्ता तो शब्दातीत होगी, क्योंकि उसका महत्त्व तो पिता से हजार गुना अधिक है।

आपने अभी तक माँ के सात्विक प्रेम को पहचाना नहीं। प्रेम-पंथ को आपकी सामीप्यता प्राप्त है। प्रेम-पंथ कमल के तंतु से भी ज्यादा क्षीण है और तलवार की धार से भी अधिक कठिन तेज। यह प्रेम-पंथ जितना सीधा है, उससे कहीं अधिक टेढ़ा भी है। चाहे वह कैसा भी हो आपके लिए अनिवार्य है। वैसे तो मुसलमान हिन्दी कवि रसखान ने भी यूँ ही कहा है कि—

यह प्रेम की पंथ करार महा,

तरवार की धार पे धावनो है । (रसखान-रत्नावली)

दूसरे शब्दों में मोम के दांतों से लोहे के चने चवाने के समान

कठिन है। (जवा लोहमया चैव चामेयव्वा सुदुक्करं।)

आप माँ से निश्छल और निष्कपट भाव से प्रेम कीजिए। प्रेम का भाव रहने से यह मार्ग सीधा है अन्यथा बड़ा टेढ़ा हो जाता है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि आप भी इस मार्ग पर अवश्य चलेंगे क्योंकि मैं प्रेम-पंथ की वास्तविकता, सत्यता और उससे लगन के जो भाव प्रकट कर रहा हूँ उसे प्रेम-पथिक रसखान ने भी व्यक्त किया हुआ है—

“कमलतंतु सो छीन अरु, कठिन खड्ग की धार।

अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेम पंथ अनिवार॥”

(रसखान रत्नावली—प्रेम-वाटिका)

माँ से हमारा प्रेम होना अति अनिवार्य है, क्योंकि करुणा, सहानुभूति एवं स्नेह के अभाव में हृदय में रूक्षता रहती है। समाज-सुधारक भक्त कवि कबीर ने कहा भी है—

जा घर प्रेम न संचरे, सो घर जान मसान।

जैसे खाल लूहार की, सांस लेत बिनु प्रान॥”

प्रेम-शून्य हृदय श्मशान बराबर है। कबीर ने प्रेमरहित हृदय को लुहार ही धोंकनी के समान बताया है। जिसने प्रेम को जान लिया, पा लिया तो इस उपलब्धि के समक्ष सारे ऐश्वर्य नगण्य है चाहे वह फिर—

“प्रात हीते सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलनि तुलैयत।”

यदि एक बार ही उसके प्रेम के स्वरूप को समझ लिया, गहराई में उतर कर पहचान लिया तो उसे जीते जी प्राप्त करने के लिए नहीं छोड़ सकेंगे। यदि ऐसा हो गया तो आप कैंकर-पुष्प से मिटकर गुलाब के पुष्प में परिवर्तित हो जायेंगे और फिर मर कर भी किसी को याद आयेंगे। किसी के अश्रुओं में मुस्करायेंगे। फूल कहेगा हर कली से कि जीना इसी का नाम है।

वर्षा-योग के दिनों में नदी में पूर आती है, तब समीपवर्ती तट का सम्पूर्ण कचरा बहाकर ले जाती है। हमारे भीतर भी प्रेम-स्नेह

की धारा शुष्क हो गयी है—सूख गयी है। जिससे माँ के प्रति हममें द्वेष, घृणा निन्दा, आलोचना और उसको पराया समझने का कूड़ा करकट एकत्रित हो गया है। आप भी उस अनुदया करने वाली के प्रति प्रेम की गंगा-यमुना ऐसी प्रवाहित कीजिए कि सारी गंदगी बह जाए और मन धुल कर पवित्र-निर्मल हो जाए।

मातृ-पितृ भक्त पुत्र श्रवण कुमार ! इसको तो हम यमुना तट पर ले जाते हैं क्योंकि वह मध्यम युग का रत्न है। इससे भी प्राचीनता की ओर अग्रसर होते हैं। जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ का शुभ नाम 'कल्प सूत्र' आदि के आधार पर मिलता है, जो विशेष उल्लेखनीय है। ऐसे पवित्र शास्त्रों में जो निर्देशित है उसका पठन-मनन और परिशीलन करना भी अपरिहार्य है।

यौवनावस्था में जिसने साधना के कंटकाकीर्ण मार्ग पर एकाकी वस्त्रहीन शरीर, निद्रा-त्यागी, मौनी, प्रायः उपवासी, समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री करुणाभाव रखने का सर्वात्मा के निःश्रेयस व अभ्युदय की भावना रखना, कर्मक्षय निमित्त विविध परीषह सहन करना पड़े तो सहजता से करना और अपने आत्म बल व तपोबल द्वारा आन्तरिक जीवन का परिक्षालन करने का वज्र संकल्प लिया था।

पर माँ का पुत्र के प्रति अत्यन्त स्नेह होने से प्रतिदिन यदा-कदा वह पौत्र भरत (पृथ्वी का प्रथम चक्रवर्ती सम्राट्) को उपालम्भ देती है—

अहो ! भरत ! कुमलित पुष्पों की भाँति मुझे छोड़कर और सर्व ऋद्धि का त्याग कर मेरा पुत्र एकाकी वनवासी हो गया, क्षुधा-तृषा से पीड़ित होगा, कहीं श्मशान में या पर्वत की गुफा आदि में रहता हुआ शीत-ताप, वात-वर्षा-डांस-मच्छरों इत्यादि से दुखी होगा। मैं तो दुर्मरा हूँ, पुत्र का दुख जानकर भी मरती नहीं हूँ मेरे समान कौन दुर्भाग्यशाली है।

अहो भरत ! तू राज्य सुख में लुब्ध बन गया है। मेरे पुत्र की

कभी खोज-खबर भी नहीं लेता । तुम सब भाई नित्य रसमय भोजन करते हो । जबकि मेरा पुत्र ! वह तो घर-घर पर नीरस भिक्षा माँगता रहता है । तुम सुन्दर पहनते ओढ़ते और बिछाते हो, पर वह तो वस्त्र-रहित नग्न रहता है । तुम अकतूल की रुई से भरे हुए विछौनों पर आराम करते हो, चंवर तुम पर बीजे जाते हैं, रसीली गीत ध्वनि सुनते हुए रात्रि व्यतीत करते हो, वह तो ऊँची-नीची जमीन पर डाभ के ऊपर शयन करता है, अथवा ध्यान-मुद्रा में खड़ा रहता है और कैसे-कैसे कष्ट से रात्रि बिताता होगा ! मेरा ऋषभ जितना दुखी है उतना दुखी इस संसार में कोई भी नहीं । यह सम्पूर्ण राज्य-ऋद्धि मेरे पुत्र की है । तुम सब भाइयों ने मिलकर मेरे पुत्र को राज्य से हटा दिया और ये सर्व समृद्धि अपने अधिकार में कर मेरे पुत्र को देश से निकाल दिया है, तुम लोगों ने कभी भी सुध नहीं ली । इत्यादि भरत को निरन्तर उपालम्भ देती हुई मरू देवी माँ का हृदय रो पड़ता है । पुत्र-विरह से मन विह्वल हो जाता है । भरत जैसे-जैसे सान्त्वनात्मक बात कहता तो वैसे-वैसे उसका विरह असह्य हो जाता ।

उसका पुत्र अपने ही उत्थान बल-वीर्य-पुरुषाकार-पराक्रम के द्वारा स्वयं को ऊर्ध्वाकाश में स्थिर रखने के लिए प्रयत्नशील है—  
 “जावते उप्पन्ने सम्मं सहइ, खमइ, तितिक्खइ, अहिया सेइ ।”  
 (श्री कल्प सूत्र, ११५) पर पुत्र के प्रति प्रेम होने से उसका विरह दिनोंदिन वृद्धि के शिखर पर चढता रहता है, जिनके कारण उनकी आँखों की कान्ति फीकी पड़ जाती है । लोक तारक मण्डल-पुतलियाँ (तिल) धूमिल और पलक रूखे हो जाते हैं, चक्षुओं पर पटल फिर गये ।

तब भरत चक्रवर्ती दादी माँ से निवेदन करता है—हे मातेश्वरी ! आप दुख मत करो । आपके पुत्र ऋषभदेव अत्यन्त प्रसन्न हैं ।

तो अभी मुझे बताओ ! मरूदेवी माँ ने कहा । भरत ने कहा—  
 ‘जब वे यहाँ पधारेंगे तब आपको दिखाऊँगा ।

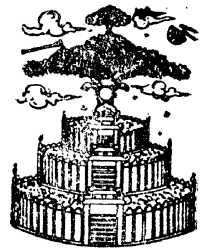
जब मरुदेवी के पुत्र ऋषभ को केवल ज्ञान—अंतिम ज्ञान उत्पन्न हुआ और “जाण माणे पासमाणे विहरई” । विचरते हुए विनिता नगरी पधारे तो भरतजी मरुदेवी माँ के पास आकर बोले—हे माँ आप सदा मुझे ये उपालम्भ देती रहती थीं कि मेरे पुत्र की कभी सुध नहीं ली । पधारो ! आज आपके पुत्र की महिमा दिखाता हूँ, वे



उद्यान में पधारे हैं—ऐसा कहकर मरुदेवी माँ को गजारूढ कर स्वयं उसके पीछे बैठ कर समवसरण की ओर चल पड़े, चलते ही गए, बढ़ते ही गए । क्योंकि माँ असंख्य दिनों से इस दिन की प्रतीक्षा में

थी कि कब वह अपने पुत्र को नेत्र भर कर देख सकेगी । मार्ग में देव-दुंदभी की ध्वनि श्रवणित होने पर माँ ने भरत से पूछा—यह रसीली ध्वनि कहाँ से सुनी जाती है । “हे माँ ! आपके पुत्र के आगे बाजे बज रहे हैं”—भरत बोले । पर वह यह बात नहीं मानती, वहाँ से जरा आगे चलने पर शोर-गुल सुनाई दिया । पुनः भरत को पूछा—यह कोलाहल कैसा है ?

आपके पुत्र के रहने के लिए स्वर्ण-रत्न कमलासन कितना सुन्दर है, मैं अपनी जबान से वर्णन करने में असमर्थ हूँ । जब भरत का यह कहना श्रवणित हुआ तो यह सुनकर सत्य मानती हुई हर्ष से पूरित नेत्रों को मलने लगी । जब उनकी महिमा से साक्षात्कार हुआ तो देखा ; देखकर विचार करने लगी, चिन्तन की गहराई में खो गयी—“ओह मोह विकलं जीवं धिकं” । मोहग्रथित जीव को धिक्कार हो ! तमाम जीव स्वार्थी होते हैं । वास्तव में जीना एक कला है तो तपस्या भी है । जीयो तो प्राण



ढाल दो जीवन में। मन ढाल दो जीवन के उपकरणों में। ठीक है। लेकिन क्यों? क्या जीने के जीना ही बड़ी बात है? सारा संसार अपने मतलब के लिए ही तो जी रहा है।

मैं इस तरह अज्ञात रही कि मेरा पुत्र ऋषभ एकाकी दुःखी होगा और इसी से सतत् भरत को उपालम्भ दिया करती थी। इस दुःख के मारे मैं अपने नेत्र खो बैठी, इस पुत्र ने मुझे कभी याद तक नहीं किया और नाहीं कोई समाचार भिजवावा कि “हे माँ! तुम मेरी चिन्ता मत करना। मैं अत्यन्त सुखी एवं प्रसन्न हूँ।” प्रत्यक्षतः यह मेरा दुःख नहीं जानता तब मेरा एक पक्षीय ही प्रेम रहा।

हृदय की अतल गहराई में प्रवाहमान माँ के अन्तर से ज्योति चमकी, दीपक जल उठा और अपना आलोक विकीर्ण करने लगा। अहो! मैं तो सरागिनी हूँ और यह वीतरागी है। वीतरागी निःस्नेह ही होते हैं। धिक्कार मेरी आत्मा को, धिक्कार हो! धिक्कार। ज्ञान होने पर भी मैं न समझ सकी, निर्मोही में मोह कैसा? इस संसार में मेरा कोई नहीं है। न मैं किसी की हूँ! यह आत्म एकाकी और ज्ञान-दर्शन चरित्रमय शास्वती है, अवशेष सब भाव अशास्वत हैं, अनित्य हैं। ऐसा विचारती हुई बारह भावना भाती है, गुण स्थानों पर चढती हुई क्षपक श्रेणी द्वारा अन्तकृत केवली होकर मरुदेवी माँ हाथी के हौदे पर ही मोक्ष पधारी।

यहाँ कवियों का कथन है कि—

सती न सीता सारखी, गती न मोक्ष समान।  
माँ न मरुदेवी सारिखी, पुत्र न ऋषभ समान ॥”

ऋषभ देव के समान कोई पुत्र नहीं हुआ कि जिसने एक हजार वर्ष पर्यन्त घोर तप करके केवल ज्ञान-उपार्जन किया और सहज ही में अपनी माँ को समर्पित कर दिया, न्योछावर कर दिया। इधर मरु देवी माँ के समकक्ष कोई माँ आज तक नहीं हुई कि जिसने अपने पुत्र-रत्न को शिव नारी से शादी करने में उत्सुक जानकर उनका

मिलन कराने के लिए पहले ही सिद्धपुरी में प्रवेश किया। एक ही सुपुत्र के कारण सिंहनी वन की साम्राज्ञी होती है किन्तु दस नालायक पुत्रों के होते हुए गधी भार ढोते-ढोते मर जाती है। कवि सम्राट् आचार्य श्री मानतुंग सूरि ने माँ-पुत्र की इस अनोखी जोड़ी का वर्णन इस प्रकार किया है—

“स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,  
नान्या स्त्रुं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।  
सर्वादिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,  
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥”  
(भक्तमार स्तोत्र २२)

He Suggests the natural birth of God. Hundreds of woman give birth to hundreds of sons but not mother (except Thine) give birth to a son that Could Stand (out in) Comparison with Thee. In all the directions there are (lit all the quarters contain) Constellations, but it is only the east brings forth the sun having a Collection of resplendent rays.

और काव्यात्मकता के रूप में साहित्यकार व कवि भंवरलाल नाहटा द्वारा किया गया भाषानुवाद है—

“सुत जन्म देती हैं सहस्रों नारियां नित लोक में ।  
किन्तु नहीं समकक्ष प्रभु के लक्ष-लक्ष अनेक में ॥  
दिशि विदिशि में नक्षत्र तारे उदित अगणित हैं सही ।  
प्राची दिशा बिन अन्य कोई भानु उपजाती नहीं ॥

वर्तमान युग में ऋषभ देव या महाराणा प्रताप जैसे शूरवीर पुत्र के समान दूसरा नहीं हुआ। मध्यकालीन डिंगल भाषा के सर्व श्रेष्ठ राजस्थानी कवि पृथ्वीराज ने अपने काव्य में जो अभिव्यक्त किया है, उसमें जो सुष्ठु विवृति हुई है। वह भी मनननीय है—

“माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राणा प्रताप ।  
अकबर सूतो ओभ के, जाण सिराणै साँप ॥





अकबर समद अथाह, सुरापण भरियो सजल ।  
मेवाड़ी तिण माँह, पोयण फूल प्रताप सी ॥”

हे माता ! तू ऐसे पुत्र को जन्म दे जैसा राणा प्रताप है । जिसको अकबर सिरहाने का साँप समझ कर सोता हुआ जाग पड़ता है । अकबर अथाह समुद्र है जिसमें वीरता रूपी जल भरा हुआ है परन्तु मेवाड़ का राणाप्रताप उसमें कमल-पुष्प की भाँति खिल रहा है । अतः माई ! ऐसे पुत्र को जन्म दें जैसे राणा प्रताप । अर्थशास्त्री आचार्य चाणक्य ने (महात्मा कौटिल्य के नाम से भी अभिहित) एक स्थान पर लिखा है कि सैकड़ों गुण रहित पुत्रों की अपेक्षा एक गुणी पुत्र श्रेष्ठ है । एक चन्द्रमा ही समस्त अन्धकार को नष्ट कर देता है, सहस्र तारे नहीं ।

“एकोऽपि गुणवान्पुत्रो, निर्गुणैश्च शतैर्वरः ।

एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति, च तारा सहस्रशः ॥”

सिद्धयोगी भर्तृहरि ने भी कहा है—जिस प्रकार सूर्य अकेला ही अपनी किरणों से समस्त संसार को प्रकाशमान कर देता है उसी प्रकार एक ही वीर अपनी शूरता, पराक्रम और साहस से सारी पृथ्वी को अपने पैरों के नीचे कर लेता है आज मरुदेवी का पुत्र ऋषभ विद्यमान नहीं है, परन्तु उसकी ज्योति युगों तक जलेगी । अमेरिकन कवि लांगफैलो की भी यही मान्यता है कि “बड़े आदमी मर जाने पर अपनी ज्योति छोड़ जाते हैं जो उनकी मृत्यु के बाद जगमगाती रहती है ।”

आजकल पुत्र-पुत्री माँ के प्रति कर्म भी अधिकांशतः इतने बुरे और असह्य हो जाते हैं कि अन्य जन उनको बुरा समझकर ही नहीं रहते । छिः ! छिः !! छिः !! करके भी सन्तोष धारण नहीं कर लेते ; उसकी धुलाई-कुटाई मरम्मत करने के लिए भी उतारू हो जाते हैं और माँ भी देव से प्रार्थना करने लगती है—“अस्त्रीय जनम काइ दीधऊ रे महेश, अवर जनम थारइ घणा रे ररेश ।” (बीसलदेव रास)

जो हमेशा माँ से उचित व्यवहार करता है, वह व्यक्ति, व्यक्ति

नहीं भगवान् के समकक्ष है। यदि उसके साथ अनुचित व्यवहार आचरण करते हैं पर इस पुस्तक का अध्ययन-मनन कर सुधर जायेंगे तो आप सही में इंसान है और केवल अपनी गलतियों को समझने तक ही सीमित रखेंगे तो आकार से मानव होते हुए भी हैवान हैं। तथा भविष्य में पुनः गलतियों पर गलतियाँ करते जाएँगे तो शैतान से कम नहीं। मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि आप सच्चे मानव बनकर भगवान् होने के लिए प्रयत्न के शिखर पर अवश्य चढ़ेंगे।

एक बात निश्चित है कि आपकी सेवा सम्यक् होनी चाहिए मिथ्या नहीं। सम्यक सहित; मिथ्या रहित। कर्म प्रधान सेवा ही सबसे बड़ी सेवा है। यही वैयावृत्य सच्चा वैयावृत्य है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि महामुनि गौतम जब भगवान् महावीर से पूछते हैं—“वैयावच्चेणं भंते जीवे किं जणयइ? (भगवन् ! वैयावृत्य (सेवा) से प्राणी क्या लाभ प्राप्त करता है) ? तब उत्तर में वे कहते हैं—“वैयावच्चेणतित्थयर नामगोतं कम्मं निबंघइ।” (वैयावृत्य से प्राणी तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है।) भगवान् महावीर, गौतम बुद्ध, कृष्ण, गुरुनानक देव, अशो जरथुस्त, और ईसा मसीह आदि सभी ने कर्म-मार्ग से फलासक्ति की प्रबलता हटाने पर प्रबल जोर दिया। लब्ध प्रतिष्ठ संत विनोबा भावे के विचारानुसार “फल तुम्हें पहले मिल चुका है। अब तो कर्म करना बाकी रह गया है, फिर फल कैसे मांगता है ?” और “अपना खा हुआ कदम ठीक होगा तो आज या कल उसका फल होगा ही।” (मोहनदास कर्मचन्द गांधी) पर शस्य श्यामल पृथ्वी की पवित्र भूमि के वासी जन वासना से ग्रस्त होकर कर्म से तो उदासीन हो बैठे और फल



प्राप्ति के इतने जोर-शोर से पीछे पड़े कि माँ को दो रोटी के टुकड़े देकर स्वयं का ऋण चुकाने की आशा करने लगे। कहा जाता है कि इस जीवन में हमारे शरीर की चमड़ी से चप्पल बनाकर पहनादे तो भी अल्प है और इसी तरह से सेवा करते-करते हम सौ-सौ जन्म न्यौछावर करदें तो भी करुणा-सिन्धु माँ द्वारा किये उपकारों का ऋण चुकाने में असमर्थ ही हैं। इस पल मुझे गुजराती की एक प्रसिद्ध कहावत याद आती है—

“अर्पी दऊँ सौ जन्म अेवडुं माँ तुज सम लेणुं ।

परन्तु आप फलासक्ति के जाल में फंसे हुए हैं। घर की बधुएँ तो समझती हैं कि चलो नौकरानी का खर्चा बच गया। परन्तु यदि माँ के मुख से विरोध के रूप में एक शब्द भी निकल जाये तो दुर्योधन, अर्जुन, भीम, कृष्ण आदि कौरव-पांडव सब इकट्ठे हो जाते हैं और महाभारत का युद्ध साक्षात् देखने को मिलता है। उनकी भावना तो यह रहती है कि रोटियों के बदले में काम करने वाली मिल गयी लेकिन यह सोचने वालों को इतना ज्ञान नहीं कि जो दूसरों के लिए बुरा सोचता है उसका खुद का बुरा होता है। क्योंकि—

“कर्म प्रधान विश्व करि राखा ।

जो जस करहि सो तस फल चाखा ॥” (तुलसीदास)

तात्पर्य यह है कि एकान्त अनुभव करने से या वृत्तियों में शैथिल्य आने से मन में घटिया-घटिया विचार डेरा डाल देते हैं। अलग होते समय माँ से हिस्से की मांग करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को डूब कर मरने के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। माँ तो माँ ही है, जो आप माँगोगे तो वह अवश्य देगी। चाहे तन काटकर या मन मसोस कर। उसका कार्य देना है चाहे उसके प्रति कोई कैसा ही विचार रखे। इसलिए मीरांबाई ने कहा है—

“तेरो मरम नहीं पायो रे ।”

आजकल समस्या ही समस्या है। सैक्स, प्रेम-विवाह, दहेज-प्रथा,

तलाक, स्त्रीस्वातन्त्र्य, वृद्धों युवक-युवतियों के विचार-संघर्ष, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बनाम समाज, आर्थिक उलझनों, धर्म बनाम विज्ञान वगैरह तो वर्तमान समाज की साधारण समस्या है। परन्तु माँ प्रभृति के सम्बन्धोंमें एक दूसरे के प्रति अमर्यादाभाव या असभ्यता चारों तरफ विकसित होती चली जा रही है, वह समस्या भारतीय संस्कृति पर महाकलंक है। यह वर्तमान युग की महाभयंकर, प्रलयकारी, संक्रामक रोग जैसी ज्वलन्त समस्या है। जिस प्रकार दृश्य काव्य हो या श्रव्य, विषयीगत हो या विषयगत। इसके भेद-उपभेद सब जगह दृष्टिगोचर होते हैं, इसी प्रकार ये समस्याएँ भी छोटी-बड़ी किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती हैं।

आपको यह ज्ञात नहीं है कि माँ के हित के लिए जीवन का उत्सर्ग करने में जिसने यथार्थ आह्लाद-आनन्द स्वीकार किया है वही जीवन का वास्तविक कलाकार है। जिसने माँ की सेवा के लिए, उसके दुःख-दर्द समाप्त करने के लिए कुछ प्रयत्न ही नहीं किया वह हाथ पैरों वाला होते हुए भी पंगु है। आँखों के होते हुए भी अन्धा है, तन के समस्त अवयव विद्यमान होते हुए भी अपाहिज है। पूँजीवान होते हुए भी भिखमंगे के समान हैं, जिसने माँ की सेवा नहीं की क्या उसका भी कोई जीवन है? नरक समान है। बीजारोपण करते हैं बबूल का और आम खाने की इच्छा रखते हैं। यही है न आपकी फलासक्ति का फल।

स्मरण रहे! माँ जो हमारी प्रकृति है, परिवार का जीवन है, प्रगति का आधार है, संस्कृति की निर्माता और शक्ति का स्रोत है। जिसको सुख, लक्ष्मी और शक्ति का प्रतीक माना गया है। उसके साथ ऐसा व्यवहार! धिक्कार है, मन ग्लानि से भर उठता है। पर क्या करें?

यदि आप पत्थर हैं तो पारस बनो, वृक्ष है तो लाजवन्ती का पौधा बनो, यदि मनुष्य हो तो माँ से प्रेम करो शुद्ध व सात्विक भाव से। अन्य के द्वारा आपके प्रति गलत किया गया व्यवहार आपको

अक्षम्य हो जाता है तो माँ के प्रति आपके द्वारा किये गये व्यवहार को भी आपको विचारना चाहिए। “आत्मनः प्रतिकूलानि परेशान् न समाचरेत्”। विस्मृत मत करो कि इसका उपकार तो हम पर असीम है। कष्ट पाकर जन्म देती है, पालती है, पोसती है, पढाती-लिखाती है। इन सब प्रयासों में वह न जाने कितने कष्ट सहन करती है और उसका आप फल क्या देते हैं! तारे आकाश की कविता है तो माँ पृथ्वी की। आपका क्या सारे संसार की यह तो भाग्य-विधाता है। शास्त्र-वचन तो यही है—

“यन्माता पितरौ कष्टं, सहेते सम्भवे नृणाम्।

न तस्य निष्कृति शक्या, कर्तुं कल्पशतैरपि ॥”

मनुष्य को पैदा करने में जो माँ कष्ट सहन करती है उसका बदला सैकड़ों कल्पों में भी हम नहीं चुका सकते।

अतः हमें माँ के प्रति पूर्ण अहिंसा का भाव रखना है। इससे तात्पर्य उसके प्रति सद्भाव से है। अहिंसा का विकृत रूप हिंसा है जो तीन प्रकार की होती है—(१) मानसिक हिंसा (२) वाचिक हिंसा (३) कायिक हिंसा।

जब सन्तान माँ का अहित या हानि की बात सोचते हैं तो वह मानसिक हिंसा होती है। जब अपने कठोर, किंवा, असत्य वाणी द्वारा माँ को कष्ट पहुंचाते हैं तो वह वाचिक हिंसा होती है जब हम उनका हनन करते हैं, मारते-पीटते हैं तो उसे कायिक या कर्म सम्बन्धी हिंसा कहते हैं। माँ के प्रति इन तीन प्रकार की हिंसा का परिहरण ही माँ के प्रति अहिंसा कहने में आयेगी।

स्वर्गीय कवि फिराक ने तो अपनी माँ के प्रति “जुगनू” रचना में कहा है—

“कभी-कभी मेरे पायल की आती है भंकार।

तो तेरी आंखों से आँसू बरसने लगते हैं ॥

मैं जुगन् बनकर तो तुझ तक पहुंच नहीं सकता ।  
 जो तुझ से हो सके ऐ माँ! तो वो तरीका बता ॥  
 तू जिसको पाले वो कागज उछाल दूँ कैसे ?  
 ये नज्म तेरे कदमों पर डाल दूँ कैसे ? ॥

जगत् के प्रत्येक धर्म एवं समाज ने माँ हेतु विविध बातें दिग्दर्शित कराई है । फिर चाहे वह वैदिक, जैन, बौद्ध, शैव, न्याय दर्शन, मीमांसक, इस्लाम, ईसाई, सिक्ख हो पारसी; प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय, मत, मजहब व रिलीजन ने माँ को अवश्य याद किया है । माँ की सेवा मन, कर्म-वचन इन तीनों से होनी चाहिए । चाहे अपनी काया को कितनी भी कठिनाई सहन करनी पड़े पर माँ की सेवा के लिए दृढ संकल्प कर लेना चाहिए । अपरिहार्य हो तो मन मारकर, स्वयं के हृदय के साथ बांध-छोड़ करके भी उसे प्रसन्न रखना चाहिए । माँ खुश तो जगत् खुश उसे दुःख तो संसार को दुःख ।

उसकी प्रसन्नता में ही सारी सृष्टि की प्रसन्नता समाहित है । अभी तक यह प्रश्न उपस्थित है कि माँ बड़ी या गुरु या राजा या अतिथि ! माँ के समक्ष ये उसी प्रकार है जिस प्रकार अथाह समुद्र के सामने छोटी सी नदी । हमें अशुभ से निकल कर शुभ में जाना है क्योंकि शुभ को ग्रहण करेंगे तो विचार शुद्ध होंगे । अशुभ को करेंगे तो इसके विपरीत होगा । अतीत को भूल जाओ व्यतीत को याद करो । यदि माँ के प्रति कुछ असभ्य या खेद जनक व्यवहार हो गया है तो धो डालो अपने आपको । पश्चाताप करके उसकी अग्नि में तिल-तिल गल कर कुन्दन बन जाओ । किये हुए दुष्कार्यों हेतु प्रतिक्रमण कर लो । जैसे सूर्य शाम को अपनी किरणों का जाल समेट लेता है ।

इससे जीवन विशुद्ध व कर्मों की निर्जरा भी होगी । “किञ्चाण-मकरणे पडिक्कमणं असल्लहणं अतहा विवरीय पख्खणाएअ” । उपदिष्ट या करणीय कार्य न करने से, माँ के प्रति जो भगवान् के वचन हैं

उसमें अश्रद्धा करने से, उनके कथन के विपरीत प्ररूपण करने से प्रतिक्रमण किया जाता है।

ऐसा करना आपके लिए उपयोगी, महत्वपूर्ण एवं करणीय भी है। प्रतिक्रमण गत समय में माँ से किये गये अव्यवहार का होता है, प्रत्याख्यान भविष्य में ऐसा न करने और शुभ कार्य हेतु किया जाता है, और आलोचना वर्तमान दोषों के परिहारार्थ करते हैं।

“इमाई छ अबयणाईं वदित्तए-अलियवयणे, हीलियवयणे खिसित वयणे, फरूसवयणे, जारत्थियवयणे, विउसकितं वापुणो उदीरित्तए।” (श्री स्थानांग सूत्र) हमें असत्य वचन, तिरस्कार युक्त वचन, आवेश में वचन, कठोर वचन, अविचारपूर्ण वचन, एवं हुए कलह को पुनः जागृत करने वाले ये षट् वचन माँ से कभी नहीं बोलना चाहिए।

कष्टकारक वचन मन को भेद देते हैं। महाभारत में अनुशासन-पर्व में कहा भी है—

“कर्णिनालीक नाराचान, निर्हरन्ति शरीरतः।

वाक्शल्यस्तु न निर्हंतुं, शक्यो हृदिशयोहि सः॥”

बन्दूक की गोली तो प्रयत्न करने से निकल ही जाती है किन्तु वचन का शल्य हृदय में चुभता ही रहता है। साधारण भाषा में मारे शब्दों का घाव भर जाये पर तीखे वचनों का घाव कभी नहीं भरता। कहावत है—“तलवार का घाव भर जाता है पर अपमान का घाव कभी नहीं।”

उभयकाल में माँ के चरण स्पर्श करने चाहिए। इससे भी पापों से मुक्ति मिलती है। “इक्कोवि नमुक्कारो” मात्र एक बार श्रद्धा से नमस्कार करने से बेड़ा पार हो जाता है। बीज को तोड़कर वृक्ष को बाहर निकालने का प्रयास व्यर्थ है। अगर विकास चाहते हो तो विश्वास सहित सोंप दो रेत को और जल सींचो, मूल तक जायेगा,

अन्तस्तल भीगेगा, फिर फूटेंगे किसलय और महकेंगे फूल । अतः—  
 टूट पड़ो माँ की गोद में,  
 झुक पड़ो माँ के चरणों में,  
 खो पड़ो माँ के दर्शनों में,  
 मर पड़ो माँ की सेवा में,  
 लग पड़ो माँ की वन्दना में ।

पीतल के बर्तनों को यदि हमेशा साफ नहीं किया जाए तो वे अपनी चमक खो बैठते हैं उसी प्रकार यदि हम माँ को नित्य करणीय नमन नहीं करेंगे तो जीना व्यर्थ हुए बिना नहीं रहेगा । जल-रहित अकेला साबुन, अरीठा या सोढ़ा शरीर से रगड़ने से शरीर का मैल कदापि नहीं उतरेगा बल्कि शरीर छिल जायेगा । नमस्कार यह जल है नमः इदुग्रं नमः, नमो देवोभ्यो नमः (नमस्कार सबसे बड़ी वस्तु है, देवता भी नमस्कार के वशीभूत होते हैं ।)

पुर्ववत् कथन कि हमें स्वयं को यह नहीं भूलना चाहिए कि माँ की तृप्ति में ही अपना सुख एवं कल्याण है । इसके विषय में क्या लिखूँ ? यदि कागज के रूप में पृथ्वी बनालूँ सारे जंगल को लेखनी और सातों समुद्र को स्याही बनालूँ, तो भी माँ के विषय में विश्लेषण करना असंभव है, असक्य है । अवर्णनीय और शब्दातीत है ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत के नवनिर्माणार्थ माँ के प्रति अपना कर्तव्य पूर्ण कर समाज के सम्मुख आप एक नूतन आदर्श प्रस्तुत कर मेरे यत्न को सफल बनायेंगे । आखिर माँ से तो हम उत्पन्न हुए हैं यदि वह नहीं होगी तो हम सब कहाँ से……!

रामराज्य को स्थापित होने में, रावण के अन्त और सीता के लौटने में, मानवता की विजय और दानवता की पराजय में, स्वार्थ प्रेरित कैकेयीवाद का हृदय-परिवर्तन करने में राम को चौदह वर्ष लगे थे । तो आपको तो बहुत कम समय लगेगा क्योंकि न तो आपके सामने धूमकेतु रावण जैसा पराक्रमी योद्धा है और न ही सीता जैसी



पत्नी का अपहरण तथा न ही वानरों की सामूहिक शक्ति की आवश्यकता। अतः उन्हें चौदह वर्ष लगा तो आपको तो अति अल्प समय लगेगा। यदि ऐसा नहीं किया तो मरते समय पछताओगे हमने माँ की सेवा नहीं की। हम उसके ऋणी हैं। हम उसका चक्रवर्ती ब्याज तो क्या मूलधन भी नहीं चुका पाये और अधिक जोने की आकांक्षा रखेंगे। किन्तु जीवन में माँ के प्रति स्वयं के कर्तव्य का कितने अंश में पालन किया, इसकी चिन्ता नहीं करेंगे। उर्दू शायरी सुप्रसिद्ध है—  
 हो उम्र खिञ्च भी तो कहेंगे बवक्ते मर्ग।

क्या हम रहे यहाँ अभी आये अभी चले ॥

अतः जब तक इस तन को व्याधि ने नहीं घेरा है, जब तक बुढ़ापा निकट नहीं आया है और यम नामक घोर दुश्मन ने अपना कूच का नगाड़ा नहीं बजाया है तथा जब तक बुद्धि सठिया नहीं गई तब तक कर्तव्य का पालन कर ले। हमारा कर्तव्य हमें मौन संकेतात्मक निमन्त्रण दे रहा है। निमन्त्रण स्वीकार कर लें। अंग्रेजी कहावत—  
 “When duty calls, we must obey. प्रसिद्ध है।

गुरु गोविन्द सिंह के छोटे सुकुमार पुत्रों को जिन्दा ही दीवार में चिन दिया गया। किन्तु वे सपूत, अमर शहोद, भारत माँ के लाड़ले अपने स्व कर्तव्य से विचलित नहीं हुए। कितनी ही आंधियां तेज हुई, कितना ही भय का सागर गरजा, कितना ही भयंकर कष्ट सहना पड़ा परन्तु अपने कर्तव्य की पूर्ति हेतु मार्ग से विचलित नहीं हुए और जिन्दा ही मृत्यु के आस बन गये। पर सत्यता यह है कि उन्हें मौत मार न सकी, शत्रु भुका न सका अपने कर्तव्य से। सर्वदा के लिए अमर कर गये अपना नाम। सत्य है—

यूँ तो जीने के लिए लोग जिया करते हैं,  
 लाभ जीवन का फिर भी नहीं लिया करते हैं।  
 मृत्यु से पहले भी मरते हैं हजारों लेकिन,  
 जिन्दगी इनकी है जो मर के जिया करते हैं ॥”

अन्त में मैं इस आशा के साथ; आशा के साथ ही नहीं बल्कि पूर्ण आत्म विश्वास के साथ अपनी लेखनी को विराम देता हूँ कि आप इसको पढ़कर सोचेंगे, विचारेंगे और मनन करेंगे। अध्ययन कर सत्यान्वेषण करेंगे। आलोक तभी हो सकता है जब तम समाप्त हो। कारण प्रभात होने से पूर्व अन्धकार होता है। फुलर ने भी कहा है—

“It is always darkest just before the day dawns.”

माँ तुझे कोटि-कोटि नमस्कार है। क्योंकि—

है युग युग से प्रज्वलित, तेरी अक्षय अविरल ज्योत।

उसी आलोकानुशङ्क को पाकर, मैं करता हूँ विश्व में उद्योत ॥”

## मेरी भावना

स्वीकृत करो इसे या न करो;  
इच्छा आपकी !

हम तो मुसाफिर ऐसा कहकर;  
चले जाएँगे !

खिदमते माँ-प्रेम-सुधारस पीकर;  
मर जाएँगे !

नाम स्वयं का जगत् में रोशन;  
कर जाएँगे !

माँ के असीम महात्म्य की झड़ियाँ;  
लगाके जाएँगे !

माँ ही सर्वोच्च है, मानव-संपुट को;  
सुनाके जाएँगे !

स्वीकृत करो इसे या न करो;  
इच्छा आपकी !

हम तो भारतवासी अपना फर्ज;  
निभाके जाएँगे !

## दानदाता सूची

- ३०००) श्री मिश्रीमल जी बाफना मोकलसर
- २०००) श्रीमति जासूद बहन मणिलाल एम. शाह  
(हस्ते-श्री कमलेश शाह) अहमदाबाद
- २०००) श्री कौशलकुमार जी, अशोककुमार जी  
सिद्धार्थ कुमार जी भंसाली दिल्ली
- १६००) श्री चांदमलजी की धर्म पत्नी अ० शौ०  
चतरबाई के सुपुत्र श्री हुकमचंद जी  
अभय कुमार जी, हिम्मर्तसिंह जी  
विमलकुमार जी लोढा कोटा
- ५००) श्री पन्नालालजी विनोद कुमारजी नाहटा  
(हस्ते-महेंद्रसिंह जी नाहटा) दिल्ली
- 
- ६१००)

प्राप्तिस्थान

**प्रकाश चन्द अशोक कुमार दफ्तरी**

C/o प्रकाश, दुकान नं० २८

६ सी, एस्प्लेनेड रो ईस्ट, कलकत्ता-६६



आचार्य प्रवर १००८ श्री जिन कान्ति सागर सूरीश्वर जी महाराज  
लब्ध प्रतिष्ठ के सुशिष्य रत्न

बायें से :- मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागर जी, मुनि श्री महिमाप्रभ सागर जी म.,  
मुनि श्री ललितप्रभ सागर जी

युवा मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागर जी के चिन्तन के मुक्ताकणों से विलसित तथा अध्ययन से संचित ज्ञान-सम्पदा से सम्पृक्त विचारोत्तेजक कृति “माँ” का प्रकाशन आधुनिक भौतिकता प्रिय जीवन की धारा को मोड़ देने का सत्साहस पूर्ण मर्मस्पर्शी प्रयत्न और गहन चिन्तन के अनन्तर नवनीत सदृश्य तापहारी भावों का यह एकाकार रूप हैं ।

इसमें अन्तर्निहित सन्देश भी यही है कि माँ के चरणों में आस्था रखने वाला व्यक्ति विजयी होकर ही रहता है । पराजय उसे हरा नहीं सकती और विजय उसे सदा सुरभित हार पहनाती हैं ।